राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध

आईएएस मुख्य परीक्षा

हल प्रश्न-पत्र

UPSC & STATE PSCs

राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध

प्रश्नोत्तर रूप में

आईएएस मुख्य परीक्षा अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र 2008-2023

1995-2007 अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र

chronicleindia.in पर निःशुल्क उपलब्ध

CHRONICLE

Nurturing Talent Since 1990

राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध

प्रश्नोत्तर रूप में

आईएएस मुख्य परीक्षा अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र 2008-2023

वर्ष 2008 से पूर्व के हल प्रश्न-पत्रों के अध्ययन हेतु आप chronicleindia.in पर विजिट कर सकते हैं; ये प्रश्न-पत्र पाठकों के लिए नि:शुल्क उपलब्ध हैं।

यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के वैकल्पिक विषय के साथ-साथ राज्य लोक सेवा आयोगों की मुख्य परीक्षाओं तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी समान रूप से उपयोगी है।

- पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हों तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हों।
- इस पुस्तक में प्रश्नों से संबंधित अन्य विशिष्ट जानकारियों को भी उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि अभ्यर्थी इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न-पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।
- इस पुस्तक का उपयोग अभ्यर्थी अपनी उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृत्ति व प्रकृति को समझने के लिए भी कर सकते हैं।

संपादक: एन. एन. ओझा

हल: क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

अनुक्रमणिका

- राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध : मुख्य परीक्षा 2023 हल प्रश्न-पत्र-I 1-14
- राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध : मुख्य परीक्षा 2023 हल प्रश्न-पत्र-II 15-30

प्रथम प्रश्न-पत्र

राजनैतिक सिद्धांत एवं भारतीय राजनीति

1. **राजनैतिक सिद्धांत : अर्थ एवं उपागम** 1-10
2. **राज्य के सिद्धांत** 11-27
   - उदारवादी, नवउदारवादी, मार्क्सवादी, बहुवादी, पश्च-उपनिवेशी एवं नारी-अधिकारवादी
3. **न्याय** 28-32
   - रॉल्स के न्याय के सिद्धांत के विशेष संदर्भ में न्याय के संप्रत्यय एवं इसके समुदायवादी समालोचक
4. **समानता** 33-37
   - सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक, समानता तथा स्वतंत्रता के बीच संबंध, सकारात्मक कार्य
5. **अधिकार** 38-45
   - अर्थ एवं सिद्धांत, विभिन्न प्रकार के अधिकार, मानवाधिकार की संकल्पना
6. **लोकतंत्र** 46-55
   - शास्त्रीय और समकालीन सिद्धांत
7. **शक्ति, प्राधान्य, विचारधारा और वैधता की संकल्पना** 56-60
8. **राजनैतिक विचारधाराएं** 61-71
   - उदारवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, फासीवाद, गांधीवाद और नारी-अधिकारवाद
9. **भारतीय राजनैतिक चिंतन** 72-81
   - धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और बौद्ध परंपराएं; सर सैयद अहमद खान, श्री अरविंद, एम.के. गांधी, बी.आर. अम्बेडकर, एम.एन. रॉय
10. **पाश्चात्य राजनैतिक चिंतन** 82-101
    - प्लेटो, अरस्तू, मैकियावेली, हॉब्स, लॉक, जॉन एस. मिल, मार्क्स, ग्राम्स्की, हान्ना आरेन्ट

भारतीय शासन एवं राजनीति

1. **भारतीय राष्ट्रवाद** 102–111

(क) भारत के स्वाधीनता संग्राम की राजनैतिक कार्यनीतियां : संविधानवाद से जन सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा एवं भारत छोड़ो; उग्रवादी एवं क्रांतिकारी आंदोलन, किसान एवं कामगार आंदोलन

(ख) भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य : उदारवादी, समाजवादी एवं मार्क्सवादी; उग्र मानवतावादी एवं दलित

2. **भारत के संविधान का निर्माण** 112–115

- ब्रिटिश शासन का रिक्थ; विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य

3. **भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं** 116–130

- प्रस्तावना, मौलिक अधिकार तथा कर्त्तव्य, नीति निदेशक सिद्धांत, संसदीय प्रणाली एवं संशोधन प्रक्रिया, न्यायिक पुनर्विलोकन एवं मूल संरचना सिद्धांत

4. **केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार के प्रधान अंग** 131–140

(क) केंद्र सरकार के प्रधान अंग : कार्यपालिका, विधायिका एवं सर्वोच्च न्यायालय की विचारित भूमिका एवं वास्तविक कार्य प्रणाली

(ख) राज्य सरकार के प्रधान अंग : कार्यपालिका, विधायिका एवं उच्च न्यायालयों की विचारित भूमिका एवं वास्तविक कार्य प्रणाली

5. **आधारिक लोकतंत्र** 141–146

- पंचायती राज एवं नगर शासन, 73वें एवं 74वें संशोधनों का महत्व, आधारिक आंदालन

6. **सांविधिक संस्थाएं/आयोग** 147–159

- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, वित्त आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग

7. **संघ राज्य पद्धति** 160–168

- सांविधानिक उपबंध, केन्द्र राज्य संबंधों का बदलता स्वरूप, एकीकरणवादी प्रवृत्तियां एवं क्षेत्रीय आकांक्षाएं, अंतर-राज्य विवाद

8. **योजना और आर्थिक विकास** 169–175

- नेहरूवादी एवं गांधीवादी परिप्रेक्ष्य, योजना की भूमिका एवं निजी क्षेत्र, हरित क्रांति, भूमि सुधार एवं कृषि संबंध, उदारीकरण एवं आर्थिक सुधार

9. **भारतीय राजनीति में जाति, धर्म एवं नृजातीयता** 176–184

10. **दल प्रणाली** 185–193

- राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दल, दलों के वैचारिक एवं सामाजिक आधार, बहुदलीय राजनीति के स्वरूप, दबाव समूह, निर्वाचक आचरण की प्रवृत्तियां, विधायकों के बदलते समाजिक-आर्थिक स्वरूप

11. **सामाजिक आंदोलन** 194–201

- नागरिक स्वतंत्रताएं एवं मानवाधिकार आंदोलन, महिला आंदोलन, पर्यावरण आंदोलन

द्वितीय प्रश्न-पत्र

तुलनात्मक राजनीति तथा अंतरराष्ट्रीय संबंध

1. **तुलनात्मक राजनीति** 202–208
   - स्वरूप एवं प्रमुख उपागम, राजनैतिक अर्थव्यवस्था एवं राजनैतिक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य; तुलनात्मक प्रक्रिया की सीमाएं

2. **तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में राज्य** 209–215
   - पूंजीवादी एवं समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में राज्य के बदलते स्वरूप एवं उनकी विशेषताएं तथा उन्नत औद्योगिक एवं विकासशील समाज

3. **राजनैतिक प्रतिनिधान एवं सहभागिता** 216–222
   - उन्नत औद्योगिक एवं विकासशील समाजों में राजनैतिक दल, दबाव समूह एवं सामाजिक आंदोलन

4. **भूमंडलीकरण** 223–232
   - विकसित और विकासशील समाजों से प्राप्त अनुक्रियाएं

5. **अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के उपागम** 233–244
   - आदर्शवादी, यथार्थवादी, मार्क्सवादी, प्रकार्यवादी एवं प्रणाली सिद्धांत

6. **अंतरराष्ट्रीय संबंधों में आधारभूत संकल्पनाएं** 245–257
   - राष्ट्रीय हित, सुरक्षा एवं शक्ति; शक्ति संतुलन एवं प्रतिरोध; पर-राष्ट्रीय कर्त्ता एवं सामूहिक सुरक्षा; विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एवं भूमंडलीकरण

7. **बदलती अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था** 258–268

   महाशक्तियों का उदय, कार्यनीतिक एवं वैचारिक द्विधुरीयता, शस्त्रीकरण की होड़ एवं शीत युद्ध; नाभिकीय खतरा

8. **अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का उद्‌भव** 269–276
   - ब्रेटनवुड से विश्व व्यापार संगठन तक; समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं तथा पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद (CMEA); नव अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की तृतीय विश्व की मांग; विश्व अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण

9. **संयुक्त राष्ट्र** 277–290
   - विचारित भूमिका एवं वास्तविक लेखा-जोखा; विशेषीकृत संयुक्त राष्ट्र अभिकरण-लक्ष्य एवं कार्यकरण; संयुक्त राष्ट्र सुधारों की आवश्यकता

10. **विश्व राजनीति का क्षेत्रीयकरण** 291–300
    - यूरोपीय संघ, आसियान, एपेक, सार्क, नाफ्टा

11. **समकालीन वैश्विक सरोकार** 301–317
    - लोकतंत्र, मानवाधिकार, पर्यावरण, लिंग न्याय, आतंकवाद, नाभिकीय प्रसार

भारत तथा विश्व

1. **भारतीय विदेश नीति** 318–336
   - विदेशी नीति के निर्धारक; नीति निर्माण की संस्थाएं; निरंतरता एवं परिवर्तन

2. **गुट निरपेक्षता आंदोलन को भारत का योगदान** 337–341
   - विभिन्न चरण; वर्तमान भूमिका

3. **भारत एवं दक्षिण एशिया** 342–356
   (क) क्षेत्रीय सहयोग : SAARC–पिछले निष्पादन एवं भावी प्रत्याशाएं
   (ख) दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में
   (ग) भारत की "पूर्व अभिमुखन" नीति
   (घ) क्षेत्रीय सहयोग की बाधाएं : नदी जल विवाद; अवैध सीमा पार उत्प्रवासन; नृजातीय द्वंद्व एवं उपप्लव; सीमा विवाद

4. **भारत और वैश्विक दक्षिण** 357–363
   - अफ्रीका एवं लातीनी अमेरिका के साथ संबंध; NIEO एवं WTO वार्ताओं के लिए आवश्यक नेतृत्व की भूमिका

5. **भारत और वैश्विक शक्ति केंद्र** 364–383
   - यूएसए, यूरोपीय संघ (EU), जापान, चीन और रूस

6. **भारत और संयुक्त राष्ट्र प्रणाली** 384–390
   - संयुक्त राष्ट्र शान्ति अनुरक्षण में भूमिका; सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता की मांग

7. **भारत एवं नाभिकीय प्रश्न** 391–399
   - बदलते प्रत्यक्षण एवं नीति

8. **भारतीय विदेश नीति में हाल के विकास** 400–416
   - अफगानिस्तान में हाल के संकट पर भारत की स्थिति; इराक एवं पश्चिम एशिया; यूएस एवं इजराइल के साथ बढ़ते संबंध; नई विश्व व्यवस्था की दृष्टि

◆❖◆❖◆❖◆

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2023

राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध

(प्रथम प्रश्न-पत्र)

खंड-A

राजनीतिक सिद्धांत : अर्थ एवं उपागम

प्र. "राजनीति-विज्ञान में मानकीय उपागम" पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर: राजनीति के अध्ययन में दार्शनिक उपागम सर्वाधिक प्राचीन है, जिसे नैतिक, मानकीय और तात्विक उपागमों के नाम से भी जाना जाता है। इनके अनुसार राजनीतिक सिद्धांत का अध्ययन मूलत: एक अच्छे राज्य एवं एक समाज का अध्ययन है।

- राजनीतिक वैज्ञानिक को एक अच्छे समाज और राज्य का ज्ञान होना चाहिए। इनके अनुसार राजनीतिक वैज्ञानिक का कार्य केवल अपने मतों को व्यक्त करना नहीं है, बल्कि एक अच्छे समाज के निर्माण को प्रेरित करना है।
- परम्परागत विचारकों में प्लेटो से लेकर काण्ट तक के दार्शनिकों की परंपरा विद्यमान है, जिन्होंने राजनीति और नैतिकता के मध्य घनिष्ठ संबंध स्थापित किया और इन्होंने 'चाहिए' पर बल प्रदान किया।
- मानकीय उपागम को पुनर्जीवित करने का श्रेय लियो स्ट्रास को दिया जाता है, जिनके अुसार मूल्य, राजनीतिक सिद्धांत के अभिन्न भाग हैं, इन्हें राजनीतिक सिद्धांत से पृथक नहीं किया जा सकता है।
- इनके अनुसार मानवीय घटनाओं के अध्ययन में दर्शन एवं विज्ञान के मध्य भेद करना अतार्किक है। इन्होंने तो यहां तक कहा कि कोई भी राजनीति विज्ञान, गैर-दार्शनिक नहीं हो सकता और कोई भी राजनीतिक दर्शन गैर-वैज्ञानिक नहीं हो सकता।
- इन्होंने उस प्रवृति की भी कड़ी आलोचना की, जिसमें राजनीति विज्ञान एवं राजनीतिक दर्शन के मध्य कृत्रिम भेद किया जाता है।

प्र. "राजनीतिक सिद्धान्त का पतन" पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर: राजनीति विज्ञान में राजनीतिक सिद्धांत का पतन प्रकृति में पारंपरिक या मानक राजनीतिक सिद्धांत की गिरावट को दर्शाता है। जो विद्वान राजनीति सिद्धांत के पतन की बात करते हैं, उनका ऐसा मानना है कि मार्क्स तथा जे. एस. मिल के बाद अब तक कोई महत्वपूर्ण राजनीतिक दार्शनिक नहीं हुआ है; उनका विचार है कि राजनीतिक सिद्धांतों का पतन या राजनीतिक सिद्धांतों के विकसित न होने के अग्रलिखित कारण हैं-

- ईस्टन के विचार में आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत का ह्रास इतिहासवाद के कारण हो रहा है। ईस्टन ने विलियम डनिंग, चार्ल्स एच. मक्लेवेन और जॉर्ज एम. सेबाइन को राजनीतिक सिद्धांत में इतिहासवाद को लाने के लिए दोषी ठहराया। इस तरह के राजनीतिक सिद्धांत ने छात्रों को मूल्यपरक सिद्धांत के गंभीर अध्ययन से वंचित कर दिया।
- कोबान का मत है कि आज के राजनीतिक वैज्ञानिक उद्देश्यहीन हो गए हैं। प्लेटो और अरस्तू ने जिस समय लिखा था, उनके मन में एक उद्देश्य था। वे तत्कालीन व्यवस्था के स्थान पर एक नवीन प्रकार की व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे। राजनीति विज्ञान के सिद्धांतों के पतन का कारण सामाजिक विज्ञानों की सापेक्षता भी रहा है।
- यशायाह बर्लिन और एस. एम. लिपसेट के अनुसार राजनीतिक सिद्धांत के पतन का मुख्य कारण पश्चिम में लोकतांत्रिक सामाजिक क्रांति की विजय है। बर्लिन और लिपसेट एक साथ कहते हैं 'यदि शास्त्रीय राजनीतिक सिद्धांत मर गया है, तो शायद यह लोकतंत्र की जीत से ही मारा गया है'।

प्र. उत्तर-व्यवहारवाद में 'प्रासंगिकता के नियम' क्रिया-विज्ञान की महत्ता का समर्थन करते हैं। विश्लेषण कीजिए।

उत्तर: उत्तर-व्यवहारवाद, व्यवहारवाद के विरोध में न आकर सुधार के लिए एक चुनौती बनकर आया। उत्तर व्यवहारवाद, अध्ययन के परम्परागत दृष्टिकोण को पूर्णत: स्वीकार करता है। यह परम्परागत और व्यवहारवादी दृष्टिकोण के उन तमाम उपयोगी पहलुओं को राजनीति विज्ञान में समाहित करना चाहता है, जिनसे राजनीति विज्ञान का विकास हो, राजनीति विज्ञान उपयोगी व प्रासंगिक बन सके।

- राजनीति विज्ञान को प्रासंगिक बनाने के लिए उत्तर व्यवहारवाद तथ्य एवं मूल्य (Fact and Value) को आवश्यकतानुसार महत्व देता है। यह राजनीति विज्ञान को समाज की तत्कालीन समस्याओं एवं संकटों के अध्ययन से संबद्ध करता है।
- उत्तर व्यवहारवाद न केवल विकसित देशों की राजनीतिक समस्याओं का अध्ययन करता है, बल्कि यह तृतीय विश्व के देशों की समस्याओं का भी अध्ययन करता है। उत्तर व्यवहारवाद चाहता है कि राजनीतिक सिद्धांत के दार्शनिक एवं अनुभववादी पक्षों में समन्वय स्थापित किया जाए।

- उत्तर-व्यवहारवादी विचार से सम्बद्ध व्यक्तियों में से डेविड ईस्टन प्रमुख थे, जो मूल रूप से 'व्यवहारवादी क्रांति' के अग्रणी समर्थकों में से एक थे। उन्होंने व्यवहारवादी आंदोलन की अगुवाई की थी और बाद में व्यवहारवादी शोधों से प्राप्त परिणामों के प्रति असंतोष व्यक्त किया।
- वर्ष 1965 में 'अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन' के वार्षिक सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में डेविड ईस्टन ने उत्तर व्यवहारवाद की पूरी वकालत की।
- ईस्टन ने व्यवहारवादी आंदोलन को परम्परागत दृष्टिकोण के प्रति विद्रोही आंदोलन कहा, जबकि उत्तर व्यवहारवाद को व्यवहारवाद के सहयोगी एवं सुधारात्मक आंदोलन की संज्ञा दी।

इस प्रकार प्लेटो की तरह ईस्टन ने भी स्वयं द्वारा समर्पित विचार में समयानुसार परिवर्तन कर दिया।

राज्य के सिद्धांत

प्र. यूरोकेन्द्रवाद, उत्तर-उपनिवेशवादी राजनीतिक सिद्धान्त का लक्ष्य एवं प्रेरक शक्ति दोनों है। विवेचन कीजिए।

उत्तर: यूरोकेन्द्रवाद एक अवधारणा है, जो इस विचार में निहित है कि यूरोपीय संस्कृति, इतिहास और मूल्यों ने ऐतिहासिक रूप से दुनिया पर अन्य संस्कृतियों और सभ्यताओं को नुकसान पहुंचाते हुए अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया है।

- दूसरी ओर, उत्तर-उपनिवेशवादी राजनीतिक सिद्धांत, एक रूपरेखा है जो विशेष रूप से यूरोपीय औपनिवेशिक विस्तार के संदर्भ में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की ऐतिहासिक विरासत की प्रतिक्रिया से उभरी है।
- उत्तर-उपनिवेशवादी राजनीतिक सिद्धांत यूरोकेन्द्रवाद की एक ऐसी विचारधारा के रूप में आलोचनात्मक रूप से जांच करता है, जिसका उपयोग औपनिवेशिक उद्यम को उचित ठहराने और बनाए रखने के लिए किया गया है।
- यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे यूरोकेन्द्रवाद ने गैर-यूरोपीय क्षेत्रों पर यूरोपीय शक्तियों के प्रभुत्व को उचित ठहराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा अक्सर गैर-यूरोपीय समाजों को हीन के रूप में चित्रित किया।
- उपनिवेशों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण समाप्त होने के बाद पूंजीवादी देशों ने अपने नियंत्रण को बनाए रखने के लिए वैचारिक व सांस्कृतिक उपनिवेशवाद का सहारा लिया। इसके तहत उन्होंने निम्नलिखित कार्य किये-
  - संचार माध्यमों के द्वारा अपनी संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया।
  - लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना के नाम पर अपना नियंत्रण बनाए रखा।
  - यूरोपीय संस्कृति को श्रेष्ठ बताने का प्रयास किया।
  - व्हाइट मैन्स बर्डन की संकल्पना का प्रतिपादन किया।
  - पर्यावरण संरक्षण के नाम पर अपने नियंत्रण को बनाए रखने का प्रयास किया।
  - विचार व वेश-भूषा के द्वारा प्रभावित किया।
- उत्तर-उपनिवेशवादी राजनीतिक सिद्धांत उपनिवेशवाद से मुक्ति के प्रयासों के पीछे एक प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करता है।
- यह यूरोकेंद्रित सत्ता संरचनाओं को नष्ट करने और उन्हें अधिक न्यायसंगत और सांस्कृतिक रूप से समावेशी प्रणालियों से प्रतिस्थापित करने का प्रयास करता है।
- उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के यूरोकेंद्रित आधारों को चुनौती देकर, उत्तर-उपनिवेशवादी सिद्धांतकार पूर्व उपनिवेशित राष्ट्रों और लोगों के लिए आत्मनिर्णय, सांस्कृतिक स्वायत्तता और राजनीतिक स्वतंत्रता की वकालत करते हैं।
- 'डिकोलोनाइजिंग द माइंड: द पॉलिटिक्स ऑफ लैंग्वेज इन अफ्रीकन लिटरेचर' (1986) में 'न्गुगी वा थ्योंगो' ने चर्चा की है कि कैसे यूरोकेन्द्रित शिक्षा और भाषा का उपयोग औपनिवेशिक नियंत्रण के उपकरण के रूप में किया गया। वह भाषा के उपनिवेशीकरण को खत्म करने और स्वदेशी भाषाओं और संस्कृतियों को बढ़ावा देने की वकालत करते हैं।

इस प्रकार, यूरोकेन्द्रवाद ने ऐतिहासिक विवरणों, ज्ञान उत्पादन और शक्ति संरचनाओं को इस तरह से आकार दिया है कि गैर-यूरोपीय संस्कृतियों और लोगों को हाशिए पर धकेल दिया गया है। उत्तर-उपनिवेशवादी सिद्धांत, अधिक समावेशी और न्यायसंगत वैश्विक व्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए यूरोकेन्द्रवाद को चुनौती देने और नष्ट करने का प्रयास करता है।

न्याय

प्र. रॉल्स के 'उदार स्व' का विचार बहुत अधिक व्यक्तिवादी है। इस सन्दर्भ में रॉल्स के न्याय सिद्धान्त की समुदायवादी आलोचना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: रॉल्स की 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' ने हाल के दिनों में राजनीतिक दर्शन की मानक प्रवृत्ति को पुनर्जीवित किया है। 20वीं सदी में रॉल्स ने अपनी प्रसिद्ध रचना "थ्योरी ऑफ जस्टिस" में न्याय की संकल्पना को पुन: राजनीतिक चिंतन के केंद्र में स्थापित किया था।

- रॉल्स का उद्देश्य विशुद्ध प्रक्रियात्मक पद्धति पर आधारित न्याय के सार्वभौमिक सिद्धांतों का निर्माण करना था। हालांकि, यह पद्धति उदारवाद पर आधारित है, जो व्यक्तिवाद को तर्क के केंद्र में रखती है।
- रॉल्स के अनुसार, न्याय समाज का केंद्रीय सद्गुण है। न्याय के नियमों का निर्माण मानवीय समाज द्वारा किया गया है, अत: न्याय मानव के तार्किक चयन का परिणाम है।

रॉल्स के न्याय का क्रमिक रूप

↓ **समान स्वतंत्रता**
↓ **अवसर की समानता**
↓ **विभेद का नियम**

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2023

राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध

(द्वितीय प्रश्न-पत्र)

खंड-A

तुलनात्मक राजनीति

प्र. तुलनात्मक राजनीति में अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत के कौन-से महत्त्वपूर्ण कार्य हैं?

उत्तर: तुलनात्मक राजनीति में अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत, राजनीतिक सिद्धांत को समझने के लिए एक वैज्ञानिक एवं प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण है, जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के काल में उभरा। अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत एक पद्धतिगत दृष्टिकोण है, जो राजनीतिक घटनाओं के व्यवस्थित और वस्तुनिष्ठ अवलोकन पर केंद्रित है।

- तुलनात्मक राजनीति में अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत विभिन्न देशों में राजनीतिक प्रणालियों, व्यवहारों और संस्थानों को समझने और उनका विश्लेषण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कई महत्वपूर्ण कार्य करता है, जो राजनीतिक घटनाओं की गहरी समझ में योगदान देता है।

तुलनात्मक राजनीति में अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत के महत्वपूर्ण कार्य

(i) **सिद्धांत विकास:** अनुभवजन्य अनुसंधान नए राजनीतिक सिद्धांतों और मॉडलों के विकास में योगदान देता है।

(ii) **नीति विश्लेषण और मूल्यांकन:** अनुभवजन्य अनुसंधान विभिन्न देशों में नीतियों और सरकारी कार्यक्रमों की प्रभावशीलता के मूल्यांकन के लिए कई आधार प्रदान करता है।

(iii) **राजनीतिक सिद्धांत को वैज्ञानिक विषय बनाना:** इस सिद्धांत का मुख्य कार्य राजनीति विज्ञान को एक वैज्ञानिक विषय बनाना था। इसने राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन में मात्रात्मक तकनीक को शामिल करके राजनीतिक सिद्धांत को वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ बनाने का प्रयास किया।

(iv) **राजनीतिक व्यवहार को समझना:** अनुभवजन्य अध्ययन मतदान पैटर्न, भागीदारी दर और राजनीतिक प्राथमिकताओं जैसे राजनीतिक व्यवहारों का पता लगाते हैं।

(v) **संस्थागत विश्लेषण:** अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे राजनीतिक संस्थानों के कामकाज और प्रभाव की जांच करता है।

(vi) **सूक्ष्म अध्ययन पर ध्यान केंद्रण:** अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य सूक्ष्म अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करना है, जिसमें एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र, विषय इत्यादि शामिल होते हैं।

(vii) **नीति सिफारिश:** तुलनात्मक राजनीति में शोधकर्ता, सरकारों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के लिए नीतिगत सिफारिशें करने के लिए अनुभवजन्य निष्कर्षों का उपयोग करते हैं।

अनुभवजन्य राजनीतिक सिद्धांत तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र का अभिन्न अंग है, क्योंकि यह शोधकर्ताओं को सिद्धांत और वास्तविक दुनिया की राजनीति के बीच अंतर को पाटने में सक्षम बनता है।

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में राज्य

प्र. एक राजनीतिक सिद्धांतकार को राज्यों की तुलना करने में किन कठिनाइयों का समाना करना पड़ता है?

उत्तर: राज्यों में अद्वितीय सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और प्रासंगिक कारक होते हैं, जो उनकी राजनीतिक प्रणालियों और व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। इन विविधताओं के कारण सभी राज्यों पर लागू होने वाले सार्वभौमिक सिद्धांतों को विकसित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन जाता है।

- पूंजीवादी, समाजवादी, उन्नत औद्योगिक और विकासशील जैसे विभिन्न प्रकार के राज्यों की तुलना करना, राजनीतिक सिद्धांतकारों के लिए जटिल चुनौतियां खड़ी करता है। सबसे बड़ी चुनौती राज्यों को परिभाषित करने और वर्गीकृत करने में है।
- विभिन्न राज्यों पर सटीक और व्यापक डेटा एकत्र करना मुश्किल हो सकता है। डेटा अधूरा, पुराना या पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो सकता है, जो तुलनात्मक विश्लेषण की विश्वसनीयता को प्रभावित करता है।
- राजनीतिक प्रणालियां अत्यधिक जटिल हो सकती हैं और राज्यों की तुलना में अक्सर राजनीतिक संस्थानों, व्यवहारों और प्रक्रियाओं की एक विस्तृत श्रृंखला का विश्लेषण शामिल होता है। इन कारकों की जटिलता सार्थक तुलनाओं को चुनौतीपूर्ण बना सकती है।
- इसके अलावा, विभिन्न राज्यों में विविध राजनीतिक परम्पराएं और विचारधाराएं होती हैं। तुलना करते समय राजनीतिक सिद्धांतकारों को इन विविधताओं को ध्यान में रखना चाहिए। कई बार भाषा संबंधी बाधाएं भी राज्यों के तुलनात्मक विश्लेषण में बाधा बन सकती हैं।

- प्राथमिक स्रोतों तक पहुंचाना और कई भाषाओं में साक्षात्कार या सर्वेक्षण आयोजित करना तार्किक और वित्तीय रूप से चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

इन चुनौतियों के बावजूद, राजनीतिक सिद्धांतकार राजनीतिक प्रणालियों, संस्थानों और व्यवहारों में अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए तुलनात्मक राजनीति में संलग्न रहना जारी रखते हैं।

राजनैतिक प्रतिनिधान एवं सहभागिता

प्र. लोकतांत्रिक राजनीति नागरिकता का निर्माण कैसे करती है?

उत्तर: लोकतंत्र और उनके केंद्र में खड़े नागरिक राजनीति के माध्यम से बनते ओर कायम रहते हैं। सरकारी नीतियां इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। सच्चे लोकतंत्र का निर्माण तभी हो सकता है, जब नागरिक राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय हो और सामूहिक समस्याओं में निरंतर अभिरुचि ले।

- "ए थ्योरी ऑफ जस्टिस" में वर्णित जॉन रॉल्स का उदारवादी मॉडल सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों और स्वतंत्रता के महत्व को रेखांकित करता है। इस मॉडल में नागरिकता की कल्पना लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं जैसे मतदान इत्यादि में भागीदारी के माध्यम से स्वायत्तता के अभ्यास के रूप में की जाती है।
- इसके विपरीत, हान्ना आरेन्ट ने "द ह्यूमन कंडीशन" में व्यक्त किये गए अपने मॉडल में अच्छे नागरिकों के निर्माण के लिए सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भागीदारी को आवश्यक बताया है। यह दृष्टिकोण नागरिकता की आधारशिला के रूप में वाद-विवाद, विचार-विमर्श और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में संलग्नता को प्राथमिकता देता है।
- लोकतंत्र में नागरिकों की सक्रिय सहभागिता इसलिए आवश्यक है, ताकि समाज की प्रमुख संस्थाओं का पर्याप्त विनियमन हो और राजनीतिक दलों में अधिक खुलापन और उत्तरदायित्व भाव हो।
- रॉबर्ट पुटनाम ने अपनी "बॉलिंग अलोन" पुस्तक में नागरिक भागीदारी और सामूहिक कार्रवाई को बढ़ावा देने में सामाजिक पूंजी और विश्वास के महत्व पर प्रकाश डाला है।
- मजबूत सामाजिक नेटवर्क और संस्थानों में विश्वास, नागरिकों के लिए राजनीतिक प्रक्रियाओं में सार्थक रूप से संलग्न होने के लिए अनुकूल वातावरण बनाते हैं।
- इसके अलावा, डिजिटल प्रौद्योगिकियों के आगमन ने भागीदारी की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देते हुए नागरिक सहभागिता के लिए नए रास्ते भी पेश किए हैं।
- जेन बेनेट ने इस बात को रेखांकित किया है कि कैसे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म नागरिकों को एकजुट होने और मुद्दों की वकालत करने में सक्षम बनाते हैं, जिससे लोकतांत्रिक भागीदारी के परिदृश्य को नया आकार मिलता है। उदाहरण के लिए, सोशल मीडिया पर #meetoo अभियान में नागरिकों की सक्रियता।
- हालांकि, इन सकारात्मक आयामों के साथ-साथ, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं पर दबाव समूहों और लॉबिंग के प्रभाव को लेकर चिंताएं भी बनी हुई हैं। मैनकुर ओल्सन और स्कैट्सनाइडर जैसे विद्वान लोकतांत्रिक नागरिकता में निहित जटिलताओं को रेखांकित करते हुए, असमान प्रतिनिधित्व और शक्तिशाली समूहों द्वारा नीतिगत परिणामों को विकृत करने की क्षमता के बारे में सवाल उठाते हैं।

संक्षेप में, लोकतांत्रिक राजनीति के भीतर नागरिकता का निर्माण कानूनी ढांचे, शैक्षिक प्रणालियों, सामाजिक संपर्क, तकनीकी प्रगति तथा व्यक्तियों और समूहों दोनों की गतिविधियों द्वारा आकार की गई एक सूक्ष्म प्रक्रिया है। इन कारकों की परस्पर क्रिया के माध्यम से नागरिकता की अवधारणा विकसित होती है, जो लोकतंत्र की गतिशील प्रकृति को प्रतिबिंबित करती है।

भूमंडलीकरण

प्र. विश्व के विकासशील देशों पर वैश्वीकरण के प्रभाव का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उत्तर: वैश्वीकरण पिछले कुछ दशकों में विश्व अर्थव्यवस्था को आकार देने वाली एक प्रमुख शक्ति रहा है। इसमें आर्थिक एकीकरण और परस्पर निर्भरता बढ़ी है, साथ ही राष्ट्रीय सीमाओं के पार प्रौद्योगिकी, संस्कृति और विचारों का प्रसार हुआ है। वैश्वीकरण विकासशील देशों को सकारात्मक व नकारात्मक दोनों तरीकों से प्रभावित कर रहा है।

- विकासशील देशों पर वैश्वीकरण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव आर्थिक विकास रहा है। जैसे-जैसे देशों ने व्यापार और निवेश के लिए अपने बाजार खोले हैं, वे पूंजी व प्रौद्योगिकी के नए स्रोतों का लाभ उठाने में सक्षम हुए हैं, जिससे आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में मदद मिली है।
- कई विकासशील देश पिछले कुछ दशकों में प्रभावशाली विकास दर हासिल करने में सफल रहे हैं, जिससे लाखों लोगों को गरीबी से बाहर निकाला गया है। हालांकि, इस संबंध में कुछ चिंताएं भी उभरी हैं कि वैश्वीकरण के लाभों को समान रूप से साझा नहीं किया जा रहा है। आलोचकों का तर्क है कि वैश्वीकरण ने विजेताओं और हारने वालों को पैदा किया है।
- कुछ देशों और समूहों को बहुत लाभ हुआ है, जबकि अन्य पीछे रह गए हैं। उदाहरण के लिए, कुछ विकासशील देशों ने महत्वपूर्ण आर्थिक विकास देखा है, जबकि दूसरों को इसे बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ा है।
- विकासशील देशों पर वैश्वीकरण का एक और प्रभाव बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs) का उदय है। ये कंपनियां वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रमुख खिलाड़ी बन गई हैं। ये नए बाजारों में निवेश कर रही हैं और वैश्वीकरण द्वारा बनाए गए नए अवसरों का लाभ उठा रही हैं।
- बहुराष्ट्रीय कंपनियां विकासशील देशों के लिए महत्वपूर्ण लाभ ला सकती है, जैसे नई नौकरियां तथा नई प्रौद्योगिकी तक पहुंच, हालांकि उनके नकारात्मक प्रभाव भी हो सकते हैं, जैसे स्थानीय व्यवसायों को विस्थापित करना और सस्ते श्रम का शोषण करना।

निष्कर्षत: विकासशील देशों पर वैश्वीकरण का प्रभाव जटिल और बहुआयामी है। यद्यपि वैश्वीकरण के नि:संदेह लाभ भी हैं, जिनमें बढ़ी हुई आर्थिक वृद्धि, प्रौद्योगिकी तक पहुंच इत्यादि शामिल है, लेकिन इससे संबंधित चिंताएं भी हैं कि लाभ समान रूप से साझा नहीं किए जा रहे हैं।

प्रथम प्रश्न पत्र

राजनैनिक सिंद्धात एवं भारतीय राजनीति

1 राजनीतिक सिद्धांत : अर्थ एवं उपागम

प्र. व्यवस्था उपागम (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: राजनीति विज्ञान में लोक प्रशासन, चुनाव और अन्य विषय शामिल हैं। व्यवस्था उपागम की संकल्पना का अर्थ है, समाज के विभिन्न घटक एक साथ कैसे काम करते हैं कि समग्र समाज एक समूह में कार्य कर सके। उदाहरण के लिए, अदालतों को विधायी निकायों के रूप में एक प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है। ये विभिन्न प्रणालियाँ परस्पर क्रिया करती हैं, जिससे समाज में राजनीति अधिक प्रभावी हो जाती है।

- समाज स्वयं एक व्यवस्था है, जिसका निर्माण राजनीतिक व्यवस्था के अतिरिक्त अन्य व्यवस्थाओं जैसे आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, धार्मिक और जैविक व्यवस्थाओं से होता है। ये सभी व्यवस्थाएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती है।
- राजनीतिक व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं से अलग और पूर्ण नहीं है। व्यक्ति का राजनीतिक आचरण न केवल उसके राजनीतिक मूल्यों अथवा प्रतिमानों से प्रभावित होता है, वरन् रक्त संबंधी धार्मिक सम्बन्ध, आर्थिक क्रियाओं तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों से भी प्रभावित होता है।
- व्यवस्था का अर्थ है- "मानवीय सम्बन्धों का स्वरूप"। कोई भी मानवीय सम्बन्ध की संरचना 'राजनीतिक व्यवस्था' बन जाती हैं यदि उसके अन्तर्गत शक्ति, नियम और सत्ता के तत्व दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

प्र. सांस्कृतिक सापेक्षवादः

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: सांस्कृतिक सापेक्षवाद की संकल्पना का अर्थ है कि सभी मान्यताएँ, रीति-रिवाज और नैतिकता अपने स्वयं के सामाजिक सन्दर्भ में एक व्यक्ति के प्रति सापेक्ष या सम्बन्धित हैं। यानि 'सही' और 'गलत' संस्कृति-विशेष हैं; जो एक समाज में नैतिक माना जाता है, वह दूसरे में अनैतिक माना जा सकता है, क्योंकि नैतिकता का कोई सार्वभौमिक मापदण्ड अस्तित्व में नहीं है, इसलिए किसी के पास दूसरे समाज के रीति-रिवाजों की जाँच करने का कोई अधिकार नहीं है।

- आधुनिक नृविज्ञान में सांस्कृतिक सापेक्षवाद व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है। सांस्कृतिक सापेक्षवादियों का मानना है कि सभी संस्कृतियाँ अपने अधिकार में योग्य हैं और समान मूल्य की हैं। संस्कृतियों की विविधता, यहाँ तक कि विरोधाभासी नैतिक विश्वासों को, सही और गलत या अच्छे और बुरे शब्दों के सन्दर्भ में नहीं माना जा सकता है।
- सांस्कृतिक सापेक्षवाद, नैतिक सापेक्षतावाद के साथ बहुत अधिक निकटता से सम्बन्धित है, जो सत्य को पूर्ण नहीं, अपितु पुष्टि किए जाने के रूप में देखता है। जो बात सही और गलत को निर्मित करती है, उसे केवल व्यक्ति या समाज के द्वारा ही निर्धारित किया जाता है, क्योंकि सत्य वस्तुनिष्ठ अर्थात् उद्देश्यपरक नहीं है, इसलिए कोई भी वस्तुनिष्ठ मापदण्ड नहीं हो सकता, जो कि सभी संस्कृतियों के ऊपर लागू हो जाए। यह कोई नहीं कह सकता है कि एक व्यक्ति सही है या गलत है; यह व्यक्तिगत विचार की विषय-वस्तु है और कोई समाज दूसरे समाज के ऊपर दोष नहीं लगा सकता है।

प्र. ''स्थायी रूप से क्रांति'':

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: स्थायी क्रांति एक क्रांतिकारी वर्ग की रणनीति है, जो स्वतंत्र रूप से और समाज के विरोधी वर्गों के साथ समझौता या गठबंधन के बिना अपने हितों का पीछा करती है।

- मार्क्सवादी सिद्धांत के भीतर एक शब्द के रूप में, यह पहली बार 1850 की शुरुआत में कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा गढ़ा गया था, लेकिन तब से इसका उपयोग विभिन्न सिद्धांतकारों द्वारा विभिन्न अवधारणाओं को संदर्भित करने के लिए किया गया है, विशेष रूप से लियोन ट्रॉट्स्की।

2

राज्य के सिद्धांत

प्र. वर्तमान में नव-उदारवाद के आधिपत्य को समुदाय, संस्कृति तथा राष्ट्र जैसे कारक कमजोर करते हैं। विवेचना कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: नवउदारवाद एक नीति मॉडल है, जिसमें राजनीति और अर्थशास्त्र दोनों शामिल हैं। यह निजी उद्यम का समर्थन करता है और आर्थिक कारकों के नियंत्रण को सरकार से निजी क्षेत्र में स्थानांतरित करना चाहता है।

- कई नवउदारवादी नीतियां मुक्त बाजार पूंजीवाद के कुशल कामकाज से संबंधित हैं और सरकारी खर्च, सरकारी विनियमन सार्वजनिक स्वामित्व को सीमित करने पर ध्यान केंद्रित करती हैं।
- नवउदारवाद अक्सर 1979 से 1990 तक यूके के प्रधान मंत्री मार्गरेट थैचर (और 1975 से 1990 तक कंजर्वेटिव पार्टी के नेता) और 1981 से 1989 तक यू.एस. के 40वें राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन के नेतृत्व से जुड़ा हुआ है। हाल ही में, नवउदारवाद को सामाजिक कार्यक्रमों पर सरकारी खर्च में कटौती करने के प्रयासों से जोड़ा गया है।
- नवउदारवाद एक राजनीतिक और आर्थिक दर्शन है; जो मुक्त व्यापार, विनियमन, वैश्वीकरण और सरकारी खर्च में कमी पर जोर देता है।
- लाईसेज-फेयर नामक अर्थशास्त्री का प्रस्ताव है कि निरंतर आर्थिक विकास से तकनीकी नवाचार, मुक्त बाजार का विस्तार और सीमित राज्य हस्तक्षेप होगा।
- हालांकि हाल के दिनों में कई देशों में ऐसी प्रवृत्तियां देखने को मिल रही हैं, जो कहीं न कहीं नवउदारवाद के प्रभुत्व को काम कर रही है जैसे कई देश राष्ट्रवाद से प्रेरित होकर संरक्षणवाद को बढ़ावा दे रहे हैं।
- वहीं बढ़ता समुदायवाद भी नवउदारवाद को कमजोर कर रहा है, क्योंकि यह मुक्त व्यापार का विरोधी है। इसके अलावा कई देशों की संस्कृति भी ऐसी है, जो नवउदारवाद की नीतियों यथा मुक्त व्यापार और वैश्वीकरण का समर्थन नहीं करती हैं।

fu"d"kZ% इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समुदाय, संस्कृति और राष्ट्र जैसे कारक नवउदारवाद के अधिपत्य के लिए चुनौती हैं।

प्र. लोकतंत्र का अभिजन सिद्धांत 'लोगों के शासन' के रूप में लोकतंत्र की संभावना को नकारता है। स्पष्ट कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: लोकतन्त्र उदारवादी सिद्धांत को व्यवहारिक रूप प्रदान करने की व्यवस्था के रूप में अपनाया गया और अन्ततः एक सर्वमान्य सिद्धांत बन गया। परन्तु लोकतन्त्र को व्यवहारिक रूप प्रदान करने और उसके संचालन को लेकर कई विकल्प उभर कर सामने आये उनके बीच मतभेद भी सामने आये।

लोकतन्त्र के मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार उदारवादी सिद्धांत पूंजीवादी हितों का पोषण करता है।

- विचारधारात्मक भ्रांति पैदा करता है और वर्ग-विभाजन को स्थायित्व प्रदान करता है। लेनिन ने उसे अल्पमत का शासन कहा। मार्क्सवाद लोकतन्त्र को संस्थाओं की अपेक्षा लोकतन्त्र की भावना को महत्व देता है। मार्क्सवाद के अनुसार, सर्वहारा का अधिनायकत्व ठोस लोकतन्त्र है तथा तर्कसंगत उत्पादन प्रणाली, अलगाव पर विजय द्वारा सच्चा लोकतन्त्र स्थापित किया जा सकता है।
- विशिष्टवर्गीय सिद्धांत नेतृत्व शक्ति पर जनता की अपेक्षा ज्यादा बल देता है और जनता को सरकार चुनने की आजादी देता है। उनके अनुसार विशिष्ट वर्गों का प्रतिस्पर्द्धा ही लोकतन्त्र का अनुरक्षण करता है।
- लोकतन्त्र का बहुलवादी सिद्धांत विशिष्ट वर्ग के अलोकतान्त्रिक तत्वों के प्रति प्रतिक्रिया थी। उनका मानना था कि समाज में शक्ति को धारण करने वाले समूहों के मध्य शक्ति का विकेन्द्रण है और विशिष्ट जन मात्र अम्पायर की भांति है। स्वायत्त समूह आपसी प्रतिस्पर्द्धा द्वारा लोकतन्त्र का पोषण करते हैं।
- 1960 के दशक में वामपंथी विचारधारा के एक समूह द्वारा जनसहभागिता को व्यापक करके सरकार व नागरिकों के मध्य परस्पर क्रिया, प्रतिक्रिया को बढ़ावा देकर लोकतन्त्र के आकार को व्यापक करने का प्रयास किया गया।
- इस विचारधारा का समर्थन पेंटमेन आदि द्वारा किया गया। इसी समय जॉन राल्स, युर्गेन हैवरमास ने विमर्शात्मक लोकतन्त्र का सिद्धांत दिया, जो क्लासिकल लोकतन्त्र की 'प्रतिबद्धर्ता' की धारणा को चुनौती देते हुए व्यक्तियों को अपनी सूझबूझ के अनुसार तर्कसंगत नीति अपनाने के लिए आपसी विचार-विमर्श पर बल देता है।
- उधर उदारवादी लोकतन्त्र में भी वाद-विवाद और विरोधाभाष है। लोकतन्त्र में व्यक्तिगत मत व बहुमत में विरोध की स्थिति बनी रहती है। स्वतंत्रता और समानता के बीच विरोधाभाव होता है तथा राजनैतिक स्तर पर लोकतंत्र व आर्थिक स्तर पर पूंजीवाद एक प्रत्यक्ष विरोधाभाष है।

3

न्याय

प्र. न्याय पर समुदायवादी परिप्रेक्ष्यों का परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: न्याय को लेकर प्रमुख राजनीतिक विचारक जॉन रॉल्स ने 1971 में अपनी पुस्तक 'ए थियोरी ऑफ जस्टिस' में मजबूती के साथ विचार व्यक्त किया कि आखिर क्यों समाज के कमजोर तबकों की भलाई के लिए राज्य को सक्रिय हस्तक्षेप करना चाहिए। अपनी थियोरी में रॉल्स शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए वितरण ामूलक न्याय के लक्ष्य को हासिल करने की कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं। अपने न्याय के सिद्धांत में उन्होंने हर किसी को समान स्वतंत्रता के अधिकार की तरफदारी की। इसके साथ ही भेदमूलक सिद्धांत के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि सामाजिक और आर्थिक अंतरों को इस तरह समायोजित किया जाना चाहिए कि इससे सबसे वंचित तबके को सबसे ज्यादा फायदा हो।

रॉल्स के सिद्धांत की कई आलोचनाएँ भी सामने आयीं, जो दरअसल सामाजिक न्याय के संदर्भ में कई नये आयामों का प्रतिनिधित्व करती थीं। इस संदर्भ में समुदायवादियों और नारीवादियों की द्वारा की गयी आलोचनाओं का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। समुदायवादियों ने सामान्य तौर पर उदारतावाद और विशेष रूप से रॉल्स के सिद्धांत की इसलिए आलोचना की कि इसमें व्यक्ति की अणुवादी संकल्पना पेश किया गया है। रॉल्स जिस व्यक्ति की संकल्पना करते हैं वह अपने संदर्भ और समुदाय से पूरी तरह कटा हुआ है। बाद में, 1980 के दशक के आखिरी वर्षों में, उदारतावादियों ने समुदायवादियों की आलोचनाओं को उदारतावाद के भीतर समायोजित करने की कोशिश की, जिसके परिणामस्वरूप बहुसंस्कृतिवाद की संकल्पना सामने आयी। इसमें यह माना गया कि अल्पसंख्यक समूहों के साथ वास्तविक रूप से तभी न्याय हो सकता है, जब उन्हें अपनी संस्कृति से जुड़े विविध पहलुओं की हिफाजत करने और उन्हें सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त करने की आजादी मिले। इसके लिए यह जरूरी है कि इनके सामुदायिक अधिकारों को मान्यता दी जाए। इस तरह सैद्धांतिक विमर्श के स्तर पर बहुसंस्कृतिवाद ने सामाजिक न्याय की अवधारणा में एक नया आयाम जोड़ा।

प्र. 'सर्वोत्तम युक्ति के रूप में अधिकार' के सिद्धांत की विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: कानून के समकालीन दार्शनिक रोनॉल्ड डोर्किन ने न्यायशास्त्र के रचनावादी सिद्धांत की वकालत की है, जिसे प्राकृतिक कानून के सिद्धांतों एवं सामान्य न्यायशास्त्र के वस्तुनिष्ठवादी सिद्धांतों के मध्य-मार्ग के रूप में विशेष रूप से चिह्नित किया जा सकता है। डोर्किन ने सर्वोत्तम युक्ति के रूप में अधिकार के सिद्धांत को प्रस्तुत किया है।

डोर्किन के अनुसार अधिकारों को राजनीतिक निर्णयों के लिए कुछ पृष्ठभूमि के औचित्य पर सर्वोत्तम युक्ति (ट्रम्प) के रूप में सबसे अच्छी तरह से समझा जाता है, जो समुदाय को एक लक्ष्य के रूप में बताता है। यदि किसी को पोर्नोग्राफी प्रकाशित करने का अधिकार है, तो इसका मतलब है कि अधिकारियों द्वारा उस अधिकार का उल्लंघन करने पर कार्रवाई करना गलत है। यहां तक कि अगर वे सही ढंग से मानते हैं कि अगर वे करते हैं तो समुदाय पूरी तरह से बेहतर होगा। प्रोफेसर रोनाल्ड डॉर्किन ने इस विचार को सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति दी कि अधिकारों को 'सर्वोत्तम युक्ति' के रूप में श्रेष्ठ माना जाता है। डोर्किन ने तर्क दिया कि सार्वजनिक भलाई के खिलाफ संतुलन के लिए अधिकारों को पूरी तरह से अस्वीकार करना है। लेकिन संतुलन के लिए शायद ही कभी अधिकारों के अधीन होने का एक परिणाम यह है कि अधिकारों को स्वयं देखभाल और विशिष्टता के साथ स्पष्ट किया जाना चाहिए। अधिकार रखने वालों और उन लोगों के लिए सीमांकन करने वाली रेखा जो क्षणिक नहीं बनती है जो सांसदों, नागरिकों, और सहायक संगठनों का ध्यान आकर्षित करती है। डोर्किन ने जोर दिया कि, अधिकार के साथ संबंध होने के कारण, संविधान का ध्यान पुरस्कृत होना चाहिए; यह इस प्रकार है कि इसका ध्यान भी कीमती होना चाहिए।

प्र. वितरणात्मक न्याय? (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2018)

उत्तर: समाज में न्याय पाने के लिए सरकारों को यह सुनिश्चित करना होता है कि कानून और नितियां सभी व्यक्तियों पर निष्पक्ष रूप से लागू हों। लेकिन इतना ही काफी नहीं है और इससे कुछ ज्यादा करने की आवश्यकता होती है सामाजिक न्याय का सरोकार वस्तुओं और सेवाओं के न्यायोचित वितरण से भी है चाहे यह राष्ट्रों के बीच वितरण का मामला हो या किसी समाज के अंदर विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के बीच का यदि समाज में गंभीर सामाजिक प्रमुख संसाधनों का पुनर्वितण हो जिससे नागरिकों को जीने के लिए समतल धरातल मिल सके इसलिए किसी देश के अंदर के साथ समाज के कानूनों और नीतियों के संदर्भ में समान बरताव किया जाए बल्कि जीवन की स्थितियों और अवसरों के मामले में भी वे कुछ बुनियादी समानता का उपभोग करें। यह हर व्यक्ति के लिए जरूरी माना गया कि वह अपने उद्देश्यों के लिए प्रयास कर सके और स्वयं को अभिव्यक्त कर सके। उदाहरण के लिए हमारे देश में सामाजिक समानता को बढ़ावा देने के लिए संविधान ने छुआछूत की प्रथा का उन्मूलन किया और यह सुनिश्चित किया कि निचली कही जाने वाली जातियों के लोगों को मंदिरों में प्रवेश, नौकरी और पानी जैसी बुनियादी जरूरतों से न रोका जा सके। विभिन्न राज्य सरकारों ने जमीन जैसे महत्वपूर्ण संसाधन के अधिक न्यायपूर्ण वितरण के लिए भूमि-सुधार लागू करने जैसे कदम भी उठाए हैं।

4

समानता

प्र. सम्पत्ति की समानता शक्ति की समानता का कारण है तथा शक्ति की समानता स्वतंत्रता है। टिप्पणी किजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: समानता एक शक्तिशाली नैतिक और राजनीतिक आदर्श के रूप में कई शताब्दियों से मानव-समाज को प्रेरित एवं निर्देशित करता रहा है। समानता की बात सभी आस्थाओं और धर्मो में समाविष्ट है।

- हर धर्म ईश्वर की रचना के रूप में प्रत्येक मनुष्य के समान महत्व की घोषणा करता है, समानता की अवधारणा एक राजनीतिक आदर्श के रूप में उन विशिष्टताओं पर जोर देती है, जिसमें तमाम मनुष्य रंग, लिंग, वंश या राष्ट्रीयता के फर्क के बाद भी साझेदार होते हैं।
- समानता का दावा है कि समान मानवता की यह धारणा ही 'सार्वभौम मानवाधिकार' या मानवता के प्रति अपराध जैसी धारणाओं के पीछे रहती है। बहुत-सी सामाजिक संस्थाएं और राजसत्ता लोगों में पद, धन हैसियत या विशेषाधिकार की असमानता कायम रखती हैं।
- आधुनिक काल में 'सभी मनुष्यों की समानता का राजसत्ता और ऐसी सामाजिक संस्थाओं के खिलाफ संघर्षों में एकजुटता लाने वाले नारे के रूप में इस्तेमाल किया गया है। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई फ्रांसीसी क्रांति में भू-सामंती, अभिजन-वर्ग और राजशाही के खिलाफ विद्रोह के दौरान 'स्वतंत्रता समानता, भाईचारा' फ्रांसीसी क्रांतिकारियों का नारा था।
- समानता की मांग बीसवीं शताब्दी में एशिया और अफ्रीका के उपनिवेश विरोधी स्वतंत्रता संघर्षों के दौरान भी उठी थी और यह लगातार उन संर्घषरत समूहों द्वारा उठाई जा रही है; जो महसूस करते हैं कि उन्हें समाज में किनारे कर दिया गया है, जैसे कि महिलाएं या दलित।
- आज समानता व्यापक रूप से स्वीकृत आदर्श है, जिसे अनेक देशों के संविधान और कानूनों में सम्मिलित किया गया है। फिर भी समाज में हमारे चारों ओर समानता की बजाय असमानता अधिक नजर आती है।
- अपने देश में हम आलीशान आवासों के साथ-साथ झोपड़पट्टियां, विश्वस्तरीय सुविधाओं से लैस स्कूल, भोजन की बर्बादी के साथ-साथ भुखमरी देखा करते हैं। कानून जो वायदा करता है और जो हमारे चारों ओर मौजूद है, उनके बीच अंतर बिल्कुल स्पष्ट है।

प्र. ''ग्राम सभा के साथ पंचायतें इस प्रकार संगठित हों कि कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों में विकास के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों की पहचान कर सकें।'' ग्राम स्वराज के संदर्भ में इस कथन का परीक्षण कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: भारत के संविधान के भाग IV में राज्य के नीति निदेशक तत्व शामिल हैं, जिसमें अनुच्छेद 40 में ग्राम पंचायतों के संगठन के लिए प्रावधान है। 24 अप्रैल, 1993 को प्रख्यापित 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 को संविधान में भाग IX के रूप में सम्मिलित किया गया है, जो राज्यों को पंचायतों की स्थापना करने का आदेश देता है।

- यह निर्धारित करता है कि 'राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा, जो उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हो।'
- भारत मुख्य रूप से एक ग्रामीण राष्ट्र है, जिसमें लगभग 65 प्रतिशत लोग और 70 प्रतिशत कार्यबल ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, जो अर्थव्यवस्था के लगभग 46 प्रतिशत का योगदान करते हैं।
- बुनियादी ढांचे का प्रावधान, ई-गवर्नेंस पर जोर, पंचायती राज संस्था की क्षमता निर्माण, केंद्रित सूचना, शिक्षा और संचार (आईईसी) अभियान, पीआरआई को मजबूत करने के लिए मंत्रालय और राज्यों द्वारा शुरू की गई कुछ मुख्य गतिविधियां हैं; मंत्रालय के बजटीय आवंटन और राज्यों के संसाधनों का उपयोग करना।
- ग्राम सभाओं द्वारा संचालित स्थानीय लोगों के परामर्श से पंचायती राज संस्थाओं द्वारा प्रभावी योजना बनाने के लिए ये पूर्वापेक्षाएँ हैं।
- पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि (बीआरजीएफ) योजना 2006-07 से 2014-15 तक 272 चिन्हित पिछड़े जिलों में लागू की गई थी, ताकि स्थानीय बुनियादी ढांचे और अन्य विकासात्मक आवश्यकताओं के साथ की क्षमता निर्माण में महत्वपूर्ण अंतराल को पाट दिया जा सके। जिला योजना तैयार करना बीआरजीएफ का अहम हिस्सा था। नौ वर्षों के दौरान, राज्यों को लगभग 27,638 करोड़ रुपये प्रदान किए गए, जिसका उपयोग बड़ी संख्या में परियोजनाओं पर किया गया।
- इसके अलावा, 2,00,292.20 करोड़ रुपये के अनुदान का उपयोग करने के लिए चौदहवें वित्त आयोग (XIV FC) की सिफारिशों की स्वीकृति के साथ जमीनी स्तर पर योजना को मजबूत किया गया, जिसने ग्राम पंचायत स्तर पर एक समग्र योजना तैयार करने पर जोर दिया।

5

अधिकार

प्र. राजनीतिक सिद्धांत में व्यवहारवादी उपागम के महत्व का परीक्षण कीजिए। इसका पालन कैसे हुआ?

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: व्यावहारवादी राजनीतिशास्त्री अध्ययन में व्यक्ति और समूहों के व्यवहार को अधिक महत्व देते हैं। उनकी दृष्टि में ऐतिहासिक घटनाओं, राजनीतिक संस्थाओं और संविधान आदि का अध्ययन करना उतना महत्वपूर्ण नहीं होता, जितना मानव व्यवहार का।

व्यावहारवादी अध्ययन पद्धति को कुछ विद्वान व्यावहारवादी मार्ग के नाम से भी पुकारते हैं। डेविड ईस्टन तो इसके तेजी से हुये प्रसार और व्यापकता को देखते हुये इसे व्यावहारवादी क्रांति कहकर पुकारा है।

- द्वितीय विश्व युद्ध के शीत युद्ध के दौर में पूंजीवाद एवं साम्यवाद के बीच वैचारिक संबंध विद्यमान था, जहां मार्क्सवादी स्वयं को वैज्ञानिक होने का दावा करते थे जिसके विरोध में अमेरिका पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन ने व्यावहारवादी उपागम के नाम से स्वयं को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया।
- अमेरिका में होने वाली व्यावहारवादी क्रांति के परिणामस्वरूप राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञानों की भांति वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया गया।
- व्यावहारवाद का राजनीति में महत्व इसलिए है कि व्यावहारवाद ने राजनीति विज्ञान को नवीन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इसने राजनीतिक में केवल सुधार नहीं किया, अपितु उसका पुनर्निर्माण किया है तथा राजनीति विज्ञान को नये मूल्य, नई भाषा, नई पद्धतियां तथा नवीन दिशाएं प्रदान की है।
- व्यावहारवादियों ने राजनीति वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाया है। उन्होंने इस बात के लिए प्रेरित किया कि राजनीति विज्ञान का अध्ययन अन्य सामाजिक विज्ञानों के संदर्भ में किया जाना चाहिए।
- अभी तक राजनीतिक वैज्ञानिकों ने केवल मूल्यों तथा आदर्शों को ही महत्व प्रदान किया तथा व्यवहारवाद ने राजनीति विज्ञान को यथार्थ के धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया। उसने इस बात पर जोर दिया कि राजनीति वैज्ञानिक का संबंध क्या है से है न कि क्या होना चाहिए।
- अंतत: व्यावहारवाद ने राजनीतिशास्त्र को राजनीति का विज्ञान बनाने के लिए प्रेरित किया है।

व्यावहारवादी उपागम के पतन के कारण

- व्यावहारवादी उपागम अपने आपको मूल्य निरपेक्ष मानता है लेकिन कोई भी जीवित प्राणी अपने अध्ययन में पूर्ण रूप से मूल्यों से दूर नहीं है।
- सिबली ने अपने लेख Limitations of Behaviouralism में लिखा है कि मूल्य किसी भी शोध में सबसे पहले आते हैं चाहे व राजनीति का क्षेत्र हो या अन्य।
- नीति-निर्माण के क्षेत्र में भी व्यावहारवाद का प्रयोग सीमित स्तर पर होता है क्योंकि व्यावहारवाद से प्राप्त निष्कर्षों के अलावा नीति-निर्माण की प्रक्रिया पर अन्य कारकों का भी प्रभाव पड़ता है।
- समसामयिक राजनीतिक समस्याओं की व्याख्या करने व उनका सर्वमान्य हल प्रस्तुत करने में व्यावहारवाद प्राय: असफल रहता है।
- व्यावहारवादी विश्लेषण पूर्ण विश्लेषण नहीं है। इसके खिलाफ उत्तर व्यावहारवाद का जन्म लेना इसकी अपूर्णता को दर्शाता है। व्यावहारवादियों ने स्वयं ही व्यावहारवादी मान्यताओं का खण्डन किया है जिसमें डेविड इस्टन का नाम उल्लेखनीय है।

प्र. क्या आपके विचार में बौद्ध परम्पराओं ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन को अधिक नैतिक आधार प्रदान किया है। अपने तर्क दीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: बौद्ध धर्म वैदिक धर्म की एक प्रतिक्रिया है। बौद्ध भारत की राजनीतिक परम्परा कुछ मापनों में हिंदू राजनीतिक विचारों के विरोधी हैं। राजनीतिक विचारों का नैतिक आधार बौद्ध राजनीतिक परम्परा की एक विशिष्ट विशेषता थी।

- प्रकृति की मूल अवस्था में मनुष्य ईश्वर तुल्य प्रणेता की स्थिति में रहता था। वे लोभ एवं अभिमान के कारण सामान्य मनुष्य में परिवर्तित हो गये। संपत्ति, राज्य व समाज की संस्था का उदय मनुष्य के प्रगतिशील पतन का परिणाम था। जब व्यक्ति कामवासना व लोभ के मोह में पड़ गए तो आपसी सहमति से संपत्ति की संस्था की स्थापना की।
- एक जातक कथा में राजस्व के उत्पत्ति एक साधारण सिद्धांत द्वारा दी गई है। दुनिया के पहले चक्र में लोगों ने एक आदमी को इकट्ठा होकर सुदंर, शुभ और आज्ञाकारी तथा पूरी तरह से परिपूर्ण पाया, उसे अपने राजा के रूप में चुना। इससे स्पष्ट है कि राजस्व की उत्पत्ति लोगों द्वारा चुनाव की प्रक्रिया से हुई थी। राजा राज्य का प्रतीक था।
- बौद्ध धर्म के अंतर्गत ही विश्व में पहली बार वज्जी संघ (वैशाली विहार) में गणतंत्र की स्थापना हुई थी। जहां पर चुनाव होता है। इस संदर्भ से स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म चुनावी गणतंत्र का समर्थक था।
- हमारे प्राचीन राजनीतिक चिंतन में प्रारंभिक बौद्ध धर्मशास्त्रियों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान राजा के आंतरिक प्रशासन और उसकी

6

लोकतंत्र

प्र. "स्वतंत्र एवं निष्पक्ष विमर्श लोकतंत्र की नींव की कुंजी है।" व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: लोकतंत्र का आशय लोगों के शासन से है। अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अपने गैरिसवर्ग भाषण में "लोकतंत्र को जनता द्वारा, जनता का, जनता के लिए शासन के रूप में परिभाषित किया।"

- जेम्स ब्राइस के अनुसार लोकतंत्र लोगों का शासन है, जिसमें लोग संप्रभु इच्छा को वोट के रूप में व्यक्त करते हैं। शूम्पीटर के अनुसार प्रजातंत्र राजनीतिक निर्णयों तक पहुंचने के लिए वह संस्थागत व्यवस्था है, जो नेताओं को निर्वाचन के माध्यम से विवादों का निर्णय करने योग्य बनाकर सामान्य कल्याण को साकार करती है।
- जैसी प्रजा होगी, राजा भी वैसा ही होगा। हालांकि लोकतंत्र में राजा का स्थान नहीं है लेकिन शासक या सरकार है जो विधान को नियंत्रित करता है। हमारे व्यवहार, सोच और संस्कृति से ही लोकतंत्र का स्वरूप बनता है। यदि लोकतंत्र को सफल होना है तो इसे हमें गंभीरता से धर्म के रूप में धारण करना होगा, जहां सभी स्वतंत्र हो और निष्पक्ष विमर्श का स्थान भी हो।
- लोकतंत्र का मूल आधार ही विचार-विमर्श है इसके प्रति हमारी सोच क्या है। क्या सचमुच भ्रष्टाचार हर जगह है क्या हम इसे रोक नहीं सकते। आजादी के 75 साल बाद भी सामान्य जनता पर वोट के लिए बिकने का आरोप लगता है क्या वाकई हर नागरिक खरीदा जा सकता है क्या हम सिर्फ वोट देने की मशीन बन गए हैं। हम दूसरे की थोपी हुई सोच पर निर्णय लेते हैं।
- यदि ऐसा है तो लोकतंत्र में जनता की भागीदारी कैसे हो, इस पर नए सिरे से सोचना होगा। मनुष्य में किसी मसले पर मतभेद होना स्वभाविक है, होना भी चाहिए लेकिन विचार-विमर्श से उसका समाधान भी होना चाहिए। बहुमत का अर्थ सिर्फ अधिक वोट या किसी दल को सीट मिलना नहीं है बल्कि विचारों का बहुमत भी निहित है।
- यदि प्रत्येक नागरिक की बात लोकतंत्र में सुनी जाने लगेगी तो लोकतंत्र खुद व खुद मजबूत हो जाएगा। अत: स्पष्ट है कि स्वतंत्र एवं निष्पक्ष विमर्श ही लोकतंत्र को मजबूत बनाता है।

प्र. प्रतिनिधि लोकतंत्र .....का अभिप्राय है कि एक निकाय के रूप में लोगों को सरकारी नीति की सामान्य दिशा को नियंत्रित करने में सक्षम होना चाहिए। (जे.एस.मिल)। टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: प्रतिनिधि लोकतंत्र को स्पष्ट करना है।
- जे. एस. मिल का दृष्टिकोण बताना है।
- प्रतिनिधिक लोकतंत्र का सिद्धांत स्पष्ट करना है।

उत्तर: प्रतिनिधि लोकतंत्र से तात्पर्य ऐसे लोकतन्त्र से है, जिसके पदाधिकारी जनता के किसी समूह द्वारा चुने जाते हैं। यह प्रणाली, 'प्रत्यक्ष लोकतंत्र' के विपरीत है और इसीलिए इसे अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र और प्रतिनिधिक सरकार भी कहते हैं। वर्तमान समय के लगभग सभी लोकतन्त्र प्रतिनिधिक लोकतंत्र ही हैं।

जे. एस. मिल का दृष्टिकोण: जहां तक जे एस मिल के दृष्टिकोण की प्रश्न है, तो स्वतंत्रता के प्रति गहरे लगाव के कारण जे. एस. मिल ने 'बहुमत के शासन' के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया, और उसकी जगह 'प्रतिनिधि शासन' का समर्थन किया। मिल का विचार था कि लोकतंत्र को सामाजिक प्रगति का साधन बनाने के लिए निर्वाचक मंडल का शिक्षित होना जरूरी है। अत: जब तक संपूर्ण निर्वाचकमंडल शिक्षित नहीं हो जाता, तब तक सार्वजनिक शक्ति अपेक्षाकृत अनुभवी और सुशिक्षित विशिष्टवर्ग को सौंपी जा सकती है।

इस उदारमना अल्पमत की छत्रछाया में जनसाधारण धीरे-धीरे सार्थक नागरिकता के गुण अर्जित कर लेंगे। फिर, यह विशिष्टवर्ग सार्वजनिक शिक्षा का समुचित प्रबंध भी करेगा। जनसाधारण में शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ उनके राजनीतिक उत्तरदायित्व भी बढ़ते जाएंगे। अंतत: एक ऐसे स्वतंत्र समाज का उदय होगा जिसमें समस्त स्त्री-पुरुष शासन के अधिकारों और कर्तव्यों में बराबर के हिस्सेदार होंगे। अत: प्रतिनिधि लोकतंत्र अर्थात एक निकाय के रूप में लोगों को सरकारी नीति की सामान्य दिशा को नियंत्रित करने में सक्षम बनाना है।

प्रतिनिधि लोकतंत्र (शासन) का सिद्धांत: मिल ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'कंसीडरेशन्स ऑन रिप्रेजेंटेटिव गवर्नमेंट -1861' (considerations on representative government-1861) के अंतर्गत प्रतिनिधि शासन के सिद्धांत का समर्थन करते हुए मताधिकार के क्रमिक विस्तार की योजना प्रस्तुत की है। यह बात महत्वपूर्ण है कि मिल स्त्री-मताधिकार के आरंभिक समर्थकों में सम्मिलित था। इससे लोकतंत्र के प्रति उसकी आस्था का संकेत मिलता है। मिल का विश्वास था कि आधुनिक लोकतंत्र के लिए केवल प्रतिनिधि शासन की प्रणाली ही उपयुक्त होगी। प्राचीन यूनानी नगर-राज्यों में प्रचलित प्रत्यक्ष लोकतंत्र को आधुनिक राज्यों में लागू करना संभव नहीं है; आधुनिक निर्वाचकमंडल अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से ही कार्य करते हैं। ये प्रतिनिधि योग्यता और अनुभव की दृष्टि से साधारणत: औसत दर्जे से बढ़कर होते हैं; तर्कसंगत बातें समझने और समझाने में इनकी क्षमता जनसाधारण से ऊँची होती है।

विधानमंडल में अल्पमत के समुचित प्रतिनिधित्व के लिए मिल ने आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) और बहुल मतदान (Plural Voting) की प्रणाली का समर्थन किया है।

7

शक्ति, प्रधान्य, विचारधारा और वैधता की संकल्पना

प्र. राज्य की वैधता के उपकरण
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: वैधता शब्द की उत्पत्ति लेजिटीमश लैटिन भाषा के शब्द से हुई है जिसका अर्थ है वैधानिक, वैधता अर्थात औचित्यपूर्णता। प्लेटों ने न्याय सिद्धांत द्वारा व अरस्तु ने संवैधानिक शासन द्वारा राज्य की वैधता सिद्ध करने का प्रयास किया है।

- इससे पूर्व भारतीय दर्शन में भी वैधता (Ligitimacy) का अप्रत्यक्ष वर्णन मिलता है। मनुस्मृत्ति कौटल्य के अर्थशास्त्र में राजा या स्वमी के सभी अधिकारों का कुछ कर्तव्यों के साथ प्रदान किया गया है।
- मध्यकाल में राजा को दैवी उत्पत्ति के सिद्धांत को राज्य की वैधता का आधार माना गया। होब्स, लॉक और रूसों ने दैवी उत्पत्ति के स्थान पर लोगों की सहमति से राज्य की वैधता को आधार बनाया।
- आधुनिक लोकतात्रिक शासन में जनता को सहभागिता को राज्य की वैधता का प्रमाण माना जाता है। वास्तव में वैधता उस कारण की ओर इशारा करती है, जिन कारणों से हम किसी सत्ता को स्वीकार करते हैं। इसका अर्थ उस सहमति से है जो लोगों द्वारा राजनीतिक व्यवस्था को दी जाती है।
- यदि किसी राजनीतिक व्यवस्था को लोगों की ऐसी स्वीकृति प्राप्त नहीं होती तब वह व्यवस्था अधिक समय तक अस्तित्व में नहीं रह सकती है।
- मतदान, जनमत, संचार के साधन, राष्ट्रवाद वे उपकरण हैं जिसके माध्यम से वैधता को प्राप्त किया जा सकता है। वैधता ग्रीन के इस कथन को सिद्ध करती है कि "इच्छा राज्य का आधार होता है न कि बल।"
- प्राचीनकाल में राजतंत्रीय व्यवस्था थी, कालान्तर में लोकतांत्रिक तत्वों का उदय हुआ। जिन राजनीतिक व्यवस्थाओं ने अपने आपकों लोकतंत्रीय तत्वों के अनुरूप ढाल लिया, उनकी वैधता बनी रही लेकिन जो ऐसा नहीं कर पाए वहां क्रांति की स्थिति बनी।
- जब राजनीतिक व्यवस्थाएं जन सामान्य की आशाओं को पूरा नहीं कर पाती है तब लोग उनके खिलाफ क्रांति करते हैं और सत्ता परिवर्तन को तैयार हो जाते हैं।
- अनेक एशियाई अफ्रीकी देशों में तख्तापलट होते रहे हैं। ऐसे में राजनीतिक व्यवस्थाएं अपने आपकों नवीन व्यवस्था के अनुरूप ढालकर वैधता के संकट का सामना करने का भी प्रयास करती है।

प्र. शक्ति की प्रकृति और अर्थ की जांच करें।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: राज्य की उत्पत्ति के शक्ति सिद्धांत के स्वरूप एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए सारगर्भित निष्कर्ष पर पहुंचना है।

उत्तर: राज्य की उत्पत्ति के महत्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक सिद्धांत शक्ति का सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार, राज्य की उत्पत्ति शक्ति के कारण हुई है। शक्ति को ही राज्य का आधार माना जा सकता है। शक्तिशाली व्यक्ति निर्बलों पर आधिपत्य जमाकर राज करना चाहता है। दुर्बल वर्ग को हराकर अपना आधिपत्य स्थापित कर राज्य स्थापित करने की प्रक्रिया ही शक्ति का सिद्धांत है।

शक्ति की प्रकृति और अर्थ: बहुत पहले यूनानी दार्शनिकों ने शक्ति सिद्धांत का प्रतिपादन किया। प्लेटों की रचना रिपब्लिक में काल्पनिक पात्र थ्रेसिमेकस का कहना था कि राज्य शक्तिशालियों का हित है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी कहा गया है कि वीर भोग्या वसुंधरा। शक्ति सिद्धांत के समर्थकों में मैकियावेली, ह्यूम, जैंक्स विचारकों के नाम लिए जाते हैं। जैंक्स के अनुसार, ऐतिहासिक दृष्टि से यह सिद्ध करने में तनिक भी कठिनाई नहीं है कि आधुनिक प्रकार के सभी राजनीतिक समाज सफल युद्ध कौशल के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आए हैं। अमेरिकी विद्वान वार्ड तथा स्मॉल ने भी राज्य की उत्पत्ति का आधार शक्ति को ही बताया है।

जर्मन विद्वान ट्रीटस्के का भी कहना है कि राज्य आक्रमण करने और रक्षा करने की जनशक्ति है, जिसका पहला काम युद्ध करना और न्याय का शासन करना है।

शक्ति सिद्धांत की सबसे तार्किक व्याख्या जर्मन विचारक ओपेन हेमर ने की है। उसके अनुसार, राज्य वह संगठन है जिसमें एक वर्ग दूसरे वर्गों के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है। यह संगठन केवल एक ही तरीके से होता है, जब सबल समूह निर्बल समूहों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने अधीन कर लेता है।

लेनिन का विचार है कि राज्य समाज के विभिन्न वर्गों के निरंतर संघर्ष की उपज है, वह पूंजीपतियों के हाथ में एक ऐसा साधन है जिसमें वे बहुसंख्यक जनता पर शासन करते हैं। लीकॉक के अनुसार, शक्ति सिद्धांत का यह अर्थ है कि सरकार की स्थापना शक्ति से की गई है। अर्थात राज्य का प्रारंभ मनुष्य द्वारा मनुष्य को दास बनाने और उनको बंद किए जाने से हुआ। शक्तिशाली जातियों ने अपने शारीरिक बल से निर्बलों को अपने अधिकार में कर लिया।

8

राजनीतिक विचारधारा

प्र. राजनीति के अरस्तूवादी दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए। आपके विचार में इसने आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्रों के विकास में किस सीमा तक योगदान दिया है।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: अरस्तू का विचार था कि राज्य के मानव शरीर की भांति अपने भाग होते हैं अर्थात व्यक्ति होते हैं। वह तर्क देता है कि जैसे शरीर से अलग उसके अंगों का कोई जीवन नहीं है उसी प्रकार राज्य से अलग व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है। अरस्तु ने राज्य को एक ईकाई नहीं माना है वहीं प्लेटों ने राज्य को इकाई माना है।

- अरस्तु महान प्राचीन यूनानी राजनीतिक दार्शनिक प्लेटो का शिष्य और विश्व विजय की महत्वाकांक्षा रखने वाले सिकंदर का गुरू था अरस्तु राजनीति विज्ञान के पिता कहे जाते हैं। उन्होंने Politics नामक प्रसिद्ध रचना लिखी।
- अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है जो शहरों और समुदायों में एक दूसरे से कंधा से कंधा मिलाकर चलते हैं। अरस्तु के अनुसार राजनीति का उद्देश्य एकत्रित किए गए सविंधानों के आधार पर जांच करना है कि क्या अच्छी सरकार बनाता है और क्या खराब सरकार बनाता है और संविधान के संरक्षण के लिए अनुकूल या प्रतिकूल कारकों की पहचान करना है।
- अरस्तु का दावा है कि सभी समुदायों का लक्ष्य कुछ अच्छा होता है। सबसे आदिम समुदाय पुरुषों और महिलाओं, स्वामी और दासों के परिवार है। परिवार मिलकर एक गांव बनाते है, जो पहला आत्मनिर्भर समुदाय है। राज्य की नींव सबसे बड़ी उपकार थी क्योंकि केवल एक राज्य के भीतर मनुष्य अपनी क्षमता को पूरा कर सकता है।
- अरस्तु का मानना है कि यदि किसी समुदाय में उत्कृष्टता वाला कोई व्यक्ति या परिवार होता है तो राजशाही सबसे अच्छा संविधान है लेकिन ऐसा मामला बहुत दुर्लभ है। क्योंकि राजशाही अत्याचार को भ्रष्ट कर देती है जो कि सबसे खराब संविधान है।
- अरस्तु का मानना है कि राजशाही के बाद सबसे अच्छा संविधान है क्योंकि सत्तारूढ़ अल्पसंख्यक शासन के लिए सबसे योग्य होंगे। इस प्रकार व्यवहार में अरस्तु ने संवैधानिक लोकतंत्र को प्राथमिकता दी।

अरस्तु ने संवैधानिक लोकतंत्र के पक्ष में निम्न तर्क पेश किए हैं-

- अरस्तु ने अपनी रचना पॉलिटिक्स में कहा कि जब व्यक्ति विधि व न्याय से परिपूर्ण होता है तो वह सर्वोत्तम होता है परंतु इससे अलग होने पर वह निकृष्ट बन जाता है।
- अरस्तु के अनुसार विधि अवैयक्तिक होती है क्योंकि विधि शासक व शासित दोनों पर समान रूप से लागू होती है।
- शासक संविधानिक विधि द्वारा शासन करते हैं तो स्वेच्छाचारी नहीं हो सकते।
- अरस्तु के अनुसार विधि युग-युग की संचित निधि है।
- अरस्तु के अनुसार संवैधानिक लोकतंत्र में शासन का आधार शासितों की सहमति है।

प्र. "राजनीतिक विचारधारा मुख्यतः सत्ता के आवंटन और उपयोग से संबंधित है।" टिप्पणी कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: एक राजनीतिक विचारधारा काफी हद तक इस बात से संबंधित होती है कि सत्ता का आवंटन कैसे किया जाए और इसका उपयोग किस उद्देश्य से किया जाए। कुछ राजनीतिक दल किसी एक निश्चित विचारधारा का बहुत ही बारीकी से पालन करते हैं, जबकि अन्य संबंधित विचारधाराओं के समूह से विशष रूप से उनमें से किसी एक को अपनाने के बिना व्यापक प्रेरणा ले सकते हैं।

राजनीति विचारधाराओं के दो आयाम हैं-

(1) लक्ष्य - समाज को कैसे संगठित किया जाए।

(2) विधि - इस लक्ष्य को प्राप्त करने का सबसे उपयुक्त तरीका क्या हो।

एक विचारधारा विचारों का एक संग्रह है। आमतौर पर प्रत्येक विचारधारा के कुछ विचार होते हैं कि वह सरकार का सबसे अच्छा रूप क्या मानता है (जैसे निरंकुशता या लोकतंत्र) और सबसे अच्छी आर्थिक प्रणाली (जैसे पूंजीवाद या समाजवाद) एक शब्द का प्रयोग कभी-कभी एक विचारधारा और उसके मुख्य विचारों में से एक दोनों की पहचान करने के लिए किया जाता है।

उदाहरण के लिए समाजवाद एक आर्थिक प्रणाली को संदर्भित कर सकता है या वो एक विचारधारा को संदर्भित कर सकता है जो उस आर्थिक प्रणाली का समर्थन करता है। एक ही शब्द का प्रयोग कई विचारधाराओं के संदर्भ में भी किया जा सकता है।

सोवियत संघ प्रकार के शासनों और मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधाराओं को संदर्भित करने के लिए साम्यवाद आम बोलचाल और शिक्षाविदों से आया है। जबकि समाजवाद अलग-अलग विचारधाराओं की एक विस्तृत श्रृंखला का उल्लेख करने के लिए आया है।

9

भारतीय राजनीतिक चिंतन

प्र. जब एक राष्ट्र कला व शिक्षाविहीन हो जाता है तब वह निर्धनता को आमंत्रित करता है। (सर सैयद अहमद खान) इस कथन के संदर्भ में एक आधुनिक भारत के सुधारक के रूप में सर सैयद अहमद खान की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: सर सैयद अहमद खान मुस्लिम शिक्षक, विधिवेता और लेखक, ऐंग्लो-मोहमडन अरिएंटल कॉलेज अलीगढ़ उत्तर प्रदेश के संस्थापक थे। सर सैयद अहमद खान ऐसे महान मुस्लिम समाज सुधारक थे जिन्होंने शिक्षा के लिए जीवन भर प्रयास किया।

- सर सैयद अहमद खान ने लोगों को पारम्परिक शिक्षा के स्थान पर आधुनिक ज्ञान हासिल करने के लिए प्रेरित किया। क्योंकि वो मानते थे कि आधुनिक शिक्षा के बिना प्रगति संभव नहीं है। अहमद खान को एक युगपुरुष के रूप में याद किया जाता है। वे सदा ही अपने भाषणों में कहा करते थे कि हिन्दू और मुसलमान भारत की दो आंखे हैं।
- सर सैयद अहमद खान हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे वही उनका मानना था कि अशिक्षा सभी समस्याओं का जड़ है। शिक्षा बिना व्यक्ति कला हीन हो जाता है और जब देश में व्यक्ति पास कला और शिक्षा नहीं होगी तो देश स्वयं ही निर्धन हो जाएगा।
- सर सैयद अहमद खान ने बहु विवाह प्रथा तथा विधवा विवाह पर लगाये गये सामाजिक प्रतिबंध की निदा की उनका मानना था कि इस्लाम धर्म विधवा पुनर्विवाह की अनुमति देता है। वे अपने कार्यों से आधुनिक समाज बनाने का प्रयास किया।
- अलीगढ़ आंदोलन कुरान की उदारवादी व्याख्या पर आधारित था। इसने इस्लाम धर्म को आधुनिक उदारवादी संस्कृति के साथ संगत करने का प्रयास किया अर्थात इस आंदोलन ने यह प्रयास किया कि इस्लाम तथा आधुनिक उदारवादी संस्कृति में तादात्मय रहे और उसमें कोई विरोधाभाष उत्पन्न न हो।
- सन् 1873 में उन्होंने कहा कि राष्ट्रवाद के मार्ग में धर्म को बाधक नहीं होना चाहिए। उन्होंने धार्मिक तथा राजनीतिक मामलों के पार्थक्य का समर्थन किया अर्थात उनका तर्क था कि इन दोनों तरह के मसलों को अलग-अलग रखा जाए। वाइसराय की विधायिका परिषद में सदस्य के रूप में उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के कल्याण हेतु प्रयास किये।
- सर सैयद अहमद खान ने मुरादाबाद में आधुनिक मदरसे की स्थापना की, जहां वैज्ञानिक शिक्षा दी जाती थी। सर सैयद अहमद खान का मुसलिम समाज सुधारकों में वही स्थान था जो सजा राम मोहन राय का हिन्दुओं के बीच।

प्र. प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन के स्रोतों की व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन के विभिन्न स्रोतों पर चर्चा करनी है।

उत्तर: प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन के योजनाबद्ध अध्ययन की शुरुआत का संबंध राष्ट्रीय आंदोलन से है क्योंकि इसी दौरान अधिकांश प्राचीन लेखन को संकलित किया गया। चूंकि प्राचीन काल में भारत में राजनीति को कोई स्वतंत्र और स्वायत्त शिक्षा का विषय नहीं समझा जाता था। हमें राजनीति की अवधारणाओं को उन स्रोतों के जमघट से खोज निकालना पड़ता है जिनमें मनुष्य जीवन के बड़े प्रश्नों के बारे में वर्णन है, जो स्वाभावत: धार्मिक और दार्शनिक होते हैं। ऐसा कोई एक मूलपाठ नहीं है, जिसमें राजनीति ही राजनीति हो।

राजनीति के अध्ययन के लिए निम्नलिखित स्रोत हैं:

- धर्मसूत्र एवं स्मृतियां
- महाकाव्य एवं पुराण
- अर्थशास्त्र
- बौद्ध एवं जैन साहित्य
- सिक्के और चीन लेख
- अन्य साहित्य स्रोत एवं पुरालेखशास्त्र

खामियां और सीमाएं

उपरोक्त स्रोतों में से अधिकांश चूंकि स्वभावत: धार्मिक है, इसलिए उनमें से राजनीति संबंधी तथ्यों को अलग करना बहुत मुश्किल है। धर्मशास्त्र समाज एवं राजनीति की एक आदर्शीकृत तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जो वास्तविकता को शायद ही दर्शाते हैं। जो विद्वान भारतीय राजनीतिक चिंतन में संलग्न हुए उन्होंने इन स्रोतों को सत्य मान लिया। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में दर्शनशास्त्रानुकूल स्रोतों की तो भरमार है परंतु राजनीतिक अथवा भौतिक सिद्धांत का अभाव है। आर. सी. मजूमदार ने कहा कि प्राचीन भारत में जो भी प्रचलित था कोई एकतंत्रीय शासन नहीं था बल्कि एक मर्यादित राजतंत्र था। केपी जायसवाल ने अपनी पुस्तक हिंदू पॉलिटी में तर्क प्रस्तुत किया कि प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था अंशत: एथेंस की तरह समानता प्रधान समाज वाली और ग्रेट ब्रिटेन की भांति संवैधानिक राजतंत्रों वाली थी। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि हिंदुओं द्वारा की गई संवैधानिक प्रगति की बराबरी संभवत: कभी नहीं हुई है। प्राचीन काल की किसी राज्य व्यवस्था का आगे निकलना तो दूर की बात है। राजनीतिक चिंतन के अध्ययन के लिए राष्ट्रवादी और पुनर्जागरणवादी चार सीमाओं को ध्यान में रखना पड़ता है:

10 पाश्चात्य राजनैतिक चिंतन

प्र. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा 'समतावादी न्याय' की ओर ले जाती है, इसकी तुलना में रॉल्स के 'निष्पक्षता के रूप में न्याय (जस्टिस ऐज फेयरनेस)' का उद्देश्य 'शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय' है। टिप्पणी कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि समाज के सभी लाभों और विशेषाधिकारों को उसके सभी सदस्यों द्वारा साझा किया जाना चाहिए। यदि किसी विशेष वर्ग के प्रति कोई संरचनात्मक असमानता है, तो सरकार को ऐसी असमानताओं को दूर करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई करनी चाहिए। सरल शब्दों में यह सकारात्मक उदारवाद के विचार और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से संबंधित है।

- यह उस तरह के राज्य के लिए है, जिसके कार्य, कानून और व्यवस्था तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उन लोगों की देखभाल करने के लिए विस्तारित हैं, जो अपनी मदद करने की स्थिति में नहीं हैं। अम्बेडकर के अनुसार, उनका सामाजिक न्याय नैतिक मूल्यों और स्वाभिमान पर आधारित है। न्याय संविधान द्वारा विनियमित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय के माध्यम से होता है।
- जॉन रॉल्स की ख्याति मुख्यत: न्याय सिद्धांत की स्थापना के कारण है। उन्होंने अपनी कृति 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' में न्याय की अवधारणा का सूक्ष्मावलोकन किया है। रॉल्स ने न्याय की अवधारणा का विश्लेषण सामान्यत: उदारवादी समतामूलक पृष्ठभूमि के तहत किया है। रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धांत को शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय की संज्ञा दी है।
- हालांकि उसने इसके माध्यम से तात्विक न्याय की स्थापना का प्रयत्न किया है। इस प्रकार रॉल्स ने न्याय की समस्या पर विचार करते हुए समतामूलक न्यायपरक समाज की स्थापना हेतु विभिन्न उक्तियों का प्रयोग किया है।
- रॉल्स की प्रसिद्ध कृति 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रकाशित हुई। यह ऐसा अवसर था, जब वहां अल्पसंख्यक वर्गों के लिए (विशेषत: अश्वेत जातियों के लिए) समान अधिकारों का आंदोलन अपने पूरे उत्कर्ष पर था और तरह-तरह की राजनीतिक असहमति का बोलबाला था।
- साथ ही यह अनुभव किया जाने लगा था कि पूंजीवादी व मिश्रित अर्थव्यवस्थाएं वस्तुओं और सेवाओं को जुटाने में चाहे कितनी ही कार्यकुशल क्यों न हो, उन्होंने आय, संपदा और शक्ति की ऐसी विषमताएं पैदा कर दी थीं, जिन्हें कहीं भी उचित नहीं माना जा सकता था।
- उपरोक्त स्थिति में रॉल्स ने न्याय के अमूर्त और दार्शनिक सिद्धांत को ऐसे रूप में उभारा जिसके अन्तर्गत अधिकारों तथा आय और संपदा के वितरण के क्षेत्र में नीति-निर्माण हेतु ठोस सुझाव प्रस्तुत किए गए थे।
- रॉल्स ने सामाजिक अनुबंध की तर्क प्रणाली का अनुसरण करते हुए एक अन्वेषणात्मक युक्ति के माध्यम से यह सिद्ध किया कि 'मौलिक अवस्था' में तथा 'अज्ञानता' के पर्दे के पीछे बैठा व्यक्ति कभी भी जोखिम नहीं लेगा। अत: उसने लोकतांत्रिक समता की प्राप्ति में न्याय के मौलिक अवयवों में विभेदक सिद्धांत को आवश्यक माना।
- रॉल्स की संकल्पना में लोकतांत्रिक समता न्याय स्थापना की आवश्यक दशा है। उसके अनुसार, न्याय के मौलिक अवयवों में समान स्वतंत्रता का सिद्धांत व अवसरों की उचित समानता का सिद्धांत लागू होने के बाद अगर विषमता की स्थिति रहती है, तब पूर्वताक्रम में विभेदक सिद्धांत को अंतिम युक्ति के रूप में लागू किया जाना चाहिए। इस प्रकार रॉल्स ने लोकतांत्रिक समानता को न्याय के साथ आबद्ध करके पूंजीवादी व्यवस्था में न्याय को एक मानवीय पहचान प्रदान किया है।

fu"d"kZ% रॉल्स के लोकतांत्रिक समानता व न्याय के सिद्धांत में उदारवादी पूंजीवादी लोकतंत्र को ही कुछ संशोधनों के साथ स्वीकार किया गया है। इसी आधार पर मार्क्सवादी, समुदायवादी आदि इसकी आलोचना करते हैं। परंतु इन सब आलोचनाओं के बावजूद यह स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं है कि उसने प्रक्रियात्मक न्याय के माध्यम से सामाजिक न्याय के लक्ष्य की पूर्ति का प्रयास किया है और लोकतांत्रिक समानता के विचार को आगे बढ़ाकर न्याय दर्शन में एक नए आयाम को सामहित किया है।

प्र. न्याय के यूनानी परिप्रेक्ष्य के साथ न्याय की रावल्सियन अवधारणा का तुलनात्मक आकलन कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: न्याय पर यूनानी विचारकों के विचार
- न्याय पर रोवल्सियन अवधारणा
- सारगर्भित निष्कर्ष

उत्तर: न्याय उस व्यवस्था का नाम है जो व्यक्तियों, समुदायों तथा समूहों को एक सूत्र में बाँधती है। किसी व्यवस्था को बनाए रखना ही न्याय है, क्योंकि कोई भी व्यवस्था किन्हीं तत्त्वों को एक-दूसरे के साथ जोड़ने के बाद ही बनती अथवा पनपती है।

भारतीय शासन एवं राजनीति

1

भारतीय राष्ट्रवाद

प्र. स्वतंत्रता-पूर्व काल में भारत में श्रमिक आन्दोलन का विश्लेषण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: भारत में आधुनिक मजदूर वर्ग का उदय 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन के तहत पूंजीवाद के आगमन के साथ हुआ। यह श्रम के अपेक्षाकृत आधुनिक संगठन और श्रम के लिए अपेक्षाकृत मुक्त बाजार के अर्थ में एक आधुनिक मजदूर वर्ग था।

- यह विकास आधुनिक कारखानों, रेलवे, डॉकयार्ड, सड़कों और भवनों से संबंधित निर्माण गतिविधियों की स्थापना के कारण हुआ था। बागान और रेलवे भारतीय उपमहाद्वीप में औपनिवेशिक पूंजीवाद के युग की शुरुआत करने वाले शुरुआती उद्यम थे।
- बंदरगाह शहर बॉम्बे, कलकत्ता और मद्रास पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के केंद्र बन गए। 19वीं सदी के अंत में बंबई में कपास मिलें, कलकत्ता में जूट मिलें और मद्रास में कई कारखाने स्थापित किए गए।
- इसी तरह के विकास अहमदाबाद, कानपुर, सोलापुर और नागपुर शहरों में हुए। भारत की पहली जूट मिल 1854 में कलकत्ता में एक स्कॉटिश उद्यमी द्वारा स्थापित की गई थी। सूती मिलों का स्वामित्व भारतीय उद्यमियों के पास था, जबकि जूट का स्वामित्व लंबे समय तक विदेशियों के पास था।
- भारत में श्रमिक आंदोलन को निम्नलिखित चरणों के माध्यम से समझा जा सकता है:

1900 से पूर्व का चरण:

- इस अवधि के दौरान श्रमिकों द्वारा कई विरोध प्रदर्शन किए गए परंतु ये आन्दोलन तात्कालिक आर्थिक शिकायतों पर आधारित एवं अव्यवस्थित प्रकृति के थे।
- सोराबजी शापूरजी, नारायण मेघाजी लोखंडे जैसे कई समाजसेवी, श्रमिकों की परिस्थितियों में सुधार करने हेतु आगे आए। हालांकि, उनके द्वारा किए गए प्रयासों ने एक संगठित मजदूर वर्ग के आंदोलन का प्रतिनिधित्व नहीं किया।

1901-1930 का चरण:

- स्वदेशी लहर (1903-1908) के दौरान, श्रमिक आंदोलन अधिक संगठित हो गया था। परंतु स्वदेशी आंदोलन की समाप्ति के साथ ही श्रमिक आंदोलन भी समाप्त होने लगा।
- वर्ष 1920 में, ब्रिटिश और भारतीय उद्यमों के विरुद्ध श्रमिक वर्गों के अधिकारों की रक्षा करने हेतु अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) नामक एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन की स्थापना की गई।
- इस संगठन ने मुख्यधारा की राष्ट्रवादी राजनीति में भी भाग लिया, परंतु बाद में यह पूर्ण रूप से आर्थिक मुद्दों पर केन्द्रित हो गया।
- 1930 के दशक में, विभिन्न वामपंथी विचारधाराओं के एकीकरण ने मजदूर संघ आंदोलन पर गहरा साम्यवादी प्रभाव डाला, परंतु सरकार के आक्रामक रवैये और आंदोलन की साम्यवादी शाखा के अलग होने से आंदोलन को एक गहरा झटका लगा।

1931 से 1947 के दौरान:

- साम्यवादियों द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में कार्य करने की अपनी नीति में परिवर्तन किया गया। इस कारण श्रमिकों ने 1931 से 1936 के मध्य राष्ट्रीय आंदोलन में भाग नहीं लिया।
- 1937-1939 की अवधि के दौरान प्रांतीय स्वायत्तता प्रदान करने, लोकप्रिय मंत्रालयों के गठन और नागरिक स्वतंत्रताओं में वृद्धि के परिणामस्वरूप कई मजदूर संघ संगठनों का उदय हुआ।
- इसी अवधि के दौरान साम्यवादियों द्वारा अपनी पहले की नीति को त्याग दिया गया और वे राष्ट्रवादी राजनीति की मुख्यधारा में शामिल हो गए।
- द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् आई राजनीतिक लहर के दौरान मजदूर वर्ग की गतिविधियों में एक आश्चर्यजनक पुनरुत्थान हुआ तथा शांतिपूर्ण ढंग से आयोजित होने वाली सभाएं और प्रदर्शन हिंसक संघर्षों में परिवर्तित हो गए।

fu"d"kZ% वास्तव में शिक्षित मध्यमवर्गीय राजनीतिज्ञों द्वारा संचालित राष्ट्रवादी या वामपंथी राजनीति के प्रति वे न तो संवेदनहीन थे और न उनसे दूर रहे, लेकिन उनका समर्थन सशर्त था। जिस प्रकार भारतीय लोकतंत्र, अशिक्षा और भ्रष्टाचार के कारण अभी भी बैशाखियों पर खड़ा है, ठीक उसी तरह मजदूर आंदोलन भी है।

प्र. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रकृति के मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य की विवेचना कीजिए।(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य राजनीति और विचारधारा से जुड़े वर्गीय नजरिये से संबंधित है।

2

भारत के संविधान का निर्माण

प्र. भारतीय संविधान की उद्देशिका अपने में 'सामाजिक समझौते' को दर्शाती है। व्याख्या कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: 'प्रस्तावना' शब्द का तात्पर्य संविधान के परिचय या प्रस्तावना से है। भारत के संविधान की प्रस्तावना लोगों की आकांक्षाओं की विशेषताओं को समाहित करता है और उस राज्य की प्रकृति की पहचान करने के आदर्शों को निर्धारित करता है, जिसे संविधान बनाने का इरादा रखता है और यह एक समतावादी समाज तथा एक प्रगतिशील राष्ट्र के मौलिक दर्शन का प्रतीक है। प्रस्तावना के शब्द एक साथ आध्यात्मिक व व्यावहारिक हैं एवं उन उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं, जिन पर इस देश की नींव रखी गई थी।

- प्रस्तावना को सभी अनुच्छेदों के मसौदा तैयार करने और एक गहरी और दिलचस्प बहस के बाद शामिल किया गया था; इसीलिए, प्रस्तावना में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द अत्यंत कीमती है। रेबेरुबारी मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी कहा गया था कि 'प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के दिमाग को खोलने की कुंजी है।
- सामाजिक अनुबंध का सिद्धांत भारत के राज्य की कानूनी प्रणाली में अंतर्निहित है, जो देश की स्थापना के सबसे महत्वपूर्ण वाक्य के साथ प्रमाणित है। सामाजिक अनुबंध की जॉन लॉक की व्याख्या शायद भारतीय संविधान की प्रकृति और यह कैसे राज्य की स्थापना करती है तथा लोगों के साथ कैसा व्यवहार करती है, यह समझाने के लिए सबसे उपयुक्त है।
- सामाजिक अनुबंध का सिद्धांत अधिकारों की उत्पत्ति के महान प्रश्न को हल करता है, यह इस विचार को उलट देता है कि केवल राजा, भगवान का प्रतिनिधि ही इस दुनिया में अधिकारों के साथ निहित है और उसके द्वारा अपनी भूमि के लोगों को वितरित किया जाता है।
- आधुनिक लोकतांत्रिक और गणतंत्र न्यायशास्त्र में कहा गया है कि अधिकार प्रकृति में होते हैं और सभी मनुष्यों के पास उनके जन्म के अवसर पर ही होते हैं। आत्मरक्षा और अस्तित्व के इन अधिकारों ने संपत्ति के विचार के आविष्कार के साथ खुद को जटिल बना लिया है।

प्र. भारतीय संविधान के निर्माण को 'सामाजिक क्रांति' की ओर एक प्रयास के परिप्रेक्ष्य में वर्णित किया जाता है। टिप्पणी कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: जब हम स्वतंत्रता दिवस मनाते हैं तो हम स्वतंत्रता से जुड़े तथ्य के सन्दर्भ में सोचते हैं कि हम ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से मुक्त हो गए थे और किसी विदेशी भूमि के शासन के अधीन नहीं हैं। हम इस बारे में सोचते हैं कि भारत कैसे अपनी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक नियति निर्धारित कर सकता है, कैसे वह विश्व मामलों पर स्वतंत्र रुख अपनाता है।

- हालाँकि, स्वतंत्रता का एक पहलू जिसे हम शायद ही कभी सार्थक रूप से याद करते हैं वह है; स्वतंत्रता आंदोलन, जिसने हमें स्वतंत्रता दिलाई । निश्चित रूप से, हमारे सामाजिक अध्ययन और नागरिक शास्त्र वर्गों ने हमारे भीतर उस वीरता और बलिदान की भावना का संचार किया, जो हमारे स्वतंत्रता सेनानियों ने सन्निहित किया था और उन घटनाओं के क्रम को निर्धारित किया, जिसके कारण 15 अगस्त, 1947 को हम स्वतंत्र हुए। लेकिन क्या हम पूरी तरह से इसकी सराहना करते हैं और क्या हम समझते हैं कि भारतीय स्वतंत्रता इतना खास और विशिष्ट है?
- सबसे पहले, विश्व इतिहास में शायद ही कभी अहिंसा और सामूहिक कार्रवाई को एक साथ किया गया हो। हिंसा हमेशा एक राजनीतिक परिणाम की ओर बड़े पैमाने पर लामबंदी के साथ, संपार्श्विकता के रूप में या एक निश्चित रणनीति के रूप में रही है। जबकि यह निश्चित रूप से भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का एक हिस्सा था, जो आश्वस्त था कि हिंसा स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्राथमिक उपकरण था, इस विचार की भारत की राजनीतिक मुख्यधारा के बीच कीमत नहीं थी। हमारे आंदोलन की प्रतिभा यह थी कि इसने अहिंसा को सामूहिक कार्रवाई के साथ जोड़ दिया।
- यह स्वतंत्रता आंदोलन के राजनीतिक मंथन में था कि भारत का संविधान मुख्य रूप से बना था। यह आंदोलन के मूल्यों और राजनीतिक प्रथाओं द्वारा सूचित किया गया था। आंदोलन के नेताओं, जिनमें से कई संविधान सभा के सदस्य बने, ने हमारे संवैधानिक गणतंत्र को डिजाइन करने के लिए अपने अनुभवों और शिक्षाओं का उपयोग किया। जब इन नेताओं को ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा मनमाने ढंग से गिरफ्तार, कैद और बुनियादी नागरिक स्वतंत्रता से वंचित किया गया था, तब स्वतंत्रता और नागरिक स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए संविधान के प्रावधान उनके दिमाग में आकार ले रहे थे।

प्र. "भारत का संविधान एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जो संवैधानिक पूर्ववृत्तों से समृद्ध है।" टिप्पणी कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: भारतीय स्वतंत्रता के दौरान भारतीय संविधान की आवश्यकता महसूस हुई और 1934 में साम्यवाद आंदोलन के प्रणेता

3

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं

प्र. विधान परिषद् बिना प्रभावशाली शक्तियों वाला सदन है। टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: भारतीय संविधान में राज्यों को राज्य की भौगोलिक स्थिति, जनसंख्या एवं अन्य पहलुओं को ध्यान में रखते हुए राज्य विधानमंडल के अंतर्गत उच्च सदन के रूप में विधानपरिषद (वैकल्पिक) की स्थापना करने की अनुमति दी गई है। जहाँ विधानपरिषद के पक्षकार इसे विधानसभा की कार्यवाही और शासक दल की निरंकुशता पर नियंत्रण रखने के लिये महत्त्वपूर्ण मानते हैं, वहीं कई बार राज्य विधानमंडल के इस सदन को समय और पैसों के दुरुपयोग की वजह बताकर इसकी भूमिका और आवश्यकता पर प्रश्न उठते रहते हैं।

foèkkueaMy dh dk;Z,oa 'kfÙkQ;k¡% साधारण विधेयक को दोनों सदनों में पेश किया जा सकता है, परंतु असहमति की स्थिति में विधानसभा प्रभावी होती है।

- विधानपरिषद किसी भी विधेयक को अधिकतम चार माह तक ही रोक सकती है।
- मुख्यमंत्री और मंत्रियों का चयन किसी भी सदन से किया जा सकता है, यदि विधानपरिषद के सदस्य को मंत्री या मुख्यमंत्री बनाया जाता है, तब भी वह विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होता है।
- वित्त विधेयक को सिर्फ विधानसभा में ही पेश किया जा सकता है, विधानपरिषद वित्त विधेयक को न ही अस्वीकृत कर सकती है और न ही 14 दिनों से अधिक रोक सकती है।
- 14 दिनों के बाद विधेयक को विधानपरिषद से स्वत: ही पारित मान लिया जाएगा।
- राज्यसभा के लिये राज्यों से जाने वाले प्रतिनिधियों और राष्ट्रपति के निर्वाचन में विधानपरिषद का कोई योगदान नहीं होता है।
- संविधान संशोधन विधेयक के संदर्भ में विधानपरिषद को कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं।
- विधानसभा को विधानपरिषद के सुझावों का अध्यारोहण करने का अधिकार प्राप्त होता है।

fu"d"kZ% विधानपरिषद राज्यसभा की तुलना में काफी प्रभावहीन होती है तथा अधिकांश विशेषज्ञों द्वारा इससे समय और धन के अपव्यय का कारण माना जाता है।

- आलोचकों के अनुसार, समाज के अलग-अलग वर्ग के सदस्यों के नाम पर राजनीतिक दल अपने अधिक-से-अधिक कार्यकर्ताओं को सरकार में लाने के लिये इस सदन का प्रयोग करते हैं।
- राज्य सरकार के निरंकुश फैसलों/आदेशों को न्यायालय व अन्य संवैधानिक संस्थाओं में चुनौती देकर सरकार की निरंकुशता पर लगाम लगाई जा सकती है।

प्र. 73वें संवैधानिक संशोधन की मुख्य विशेषताओं का परीक्षण कीजिए। क्या आप मानते हैं कि यह संशोधन समाज के वंचित वर्गों के सशक्तिकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायक होगा ? (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 में पारित किया गया था और यह 24 अप्रैल, 1993 को प्रभाव में आया। इस अधिनियम ने राज्य सरकारों को आवश्यक कदम उठाने का अधिकार दिया, जिससे ग्राम पंचायतों का औपचारिककरण हो सके और उन्हें स्वयं शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में मदद मिल सके।

- 1992 में अधिनियम पारित होने से बहुत पहले भारत में ग्राम पंचायतें मौजूद थीं, लेकिन प्रणाली में अंतर्निहित कमजोरियां भी थीं।
- यह वित्तीय संसाधनों की कमी, नियमित चुनाव नहीं होने और अनुसूचित जाति/जनजाति और महिलाओं जैसे कमजोर वर्गों के अपर्याप्त प्रतिनिधित्व जैसे कई कारकों के कारण था।
- भारत के संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत अनुच्छेद 40 में निर्धारित करते हैं कि सरकार ग्राम पंचायतों की स्थापना और सुचारु कामकाज की सुविधा प्रदान करेगी। इन मुद्दों को संबोधित करने और भारत में स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के लिए, केंद्र सरकार ने 1992 में 73वां संशोधन अधिनियम लाया। यह अधिनियम दोनों सदनों में पारित हुआ और 24 अप्रैल, 1993 से लागू हुआ। इस अधिनियम ने संविधान में 'भाग I: पंचायत' नामक एक नया अध्याय जोड़ा।

vfèkfu;e dh eq[; fo'ks"krk,a%

- इस अधिनियम ने देश में पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक निकाय बना दिया। अनुच्छेद 243-B के तहत, प्रत्येक राज्य के लिए अपने क्षेत्रों में पंचायतों की स्थापना करना अनिवार्य हो गया है।
- अनुच्छेद 243-G राज्य सरकारों के लिए पंचायतों को शक्तियां, जिम्मेदारियां और अधिकार सौंपना अनिवार्य बनाता है।
- ग्राम पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष निश्चित होता है।
- राज्य चुनाव आयोगों को ग्राम पंचायतों के स्वतंत्र चुनाव कराने के लिए तंत्र प्रदान किया गया है।
- अनुच्छेद 243-D महिलाओं और अनुसूचित जाति/जनजाति के उचित प्रतिनिधित्व के लिए प्रावधान करता है।
- राज्य वित्त आयोग को भी हर पांच साल में पंचायतों की वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन करना।
- 73वें संशोधन के पारित होने से देश में स्थानीय स्वशासन में काफी सुधार हुआ है। इसे मनाने व संस्थानों को और गति देने के लिए केंद्र सरकार ने 2010 में हर साल 24 अप्रैल को राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस के रूप में मनाने का फैसला किया।

4 केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार के प्रधान अंग

प्र. स्पीकर सदन की स्वतंत्रता और गरिमा का प्रतिनिधित्व करता है। परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: भारत में लोक सभा अध्यक्ष का कार्यालय एक जीवंत और गतिशील संस्था है, जो अपने कार्यों के निष्पादन में संसद की वास्तविक आवश्यकताओं और समस्याओं से संबंधित है। संविधान के अनुच्छेद 93 में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों के चुनाव का प्रावधान है। अध्यक्ष सदन का संवैधानिक और औपचारिक प्रमुख होता है। संसद के प्रत्येक सदन का अपना पीठासीन अधिकारी होता है। लोकसभा के लिए एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और राज्य सभा के लिए एक सभापति, एक उपसभापति होता है।

Hkkjrh; lalnh; ç.kkyh esa vè;{k%

संसद के प्रत्येक सदन का अपना एक पीठासीन अधिकारी होता है। राज्यसभा में इसे सभापति व लोकसभा में अध्यक्ष कहा जाता है। इसी प्रकार राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन का भी अपना एक पीठासीन अधिकारी होता है। विधानसभा में इसे अध्यक्ष तथा विधानपरिषद में सभापति कहा जाता है। भारतीय संसदीय लोकतंत्र में अध्यक्ष की भूमिका को काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है।

- लोकसभा अध्यक्ष के संदर्भ में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "अध्यक्ष सदन की गरिमा तथा उसकी स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करता है और चूँकि सदन राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिये अध्यक्ष एक प्रकार से राष्ट्र की स्वतंत्रता और स्वाधीनता का प्रतीक होता है।"
- सदन का अध्यक्ष सदन के प्रतिनिधियों का मुखिया तथा उनकी शक्तियों और विशेषाधिकारों का अभिभावक होता है।
- भारत के राजनीतिक इतिहास में ऐसे कई महत्त्वपूर्ण उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें सदन के अध्यक्षों ने महत्त्वपूर्ण निर्णय लेकर राज्य या राष्ट्र की राजनीति को प्रभावित किया है:
- वर्ष 1988 में तमिलनाडु विधानसभा अध्यक्ष पी.एच. पांडियन ने अपनी ही पार्टी-अन्नाद्रमुक (AIADMK) के छः वरिष्ठ मंत्रियों को अयोग्य ठहराया था।

vè;{k dh Hkwfedk% सदन का अध्यक्ष सदन का प्रधान प्रवक्ता होता है और सदन में सामूहिक मत का प्रतिनिधित्व करता है।

- दसवीं अनुसूची के तहत अयोग्यता के मामलों सहित सभी संसदीय मामलों में अध्यक्ष का निर्णय अंतिम और बाध्यकारी होता है, जिसे सामान्यत: न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार अध्यक्ष सदन में मध्यस्थ के रूप में भी कार्य करता है।
- हालाँकि किहोतो होलोहन बनाम जाचिल्हू मामले (1993) में सर्वोच्च न्यायालय का मत था कि दसवीं अनुसूची के तहत सदस्यों की अयोग्यता के संबंध में सदन के अध्यक्ष के निर्णय को न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है।
- अध्यक्ष सदन की कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने और उसे विनियमित करने के लिये सदन में व्यवस्था और शिष्टाचार बनाए रखने का कार्य भी करता है।
- अध्यक्ष को बहस के लिये अवधि आवंटित करने और सदन के सदस्यों को अनुशासित करने का अधिकार है। साथ ही वह सदन की विभिन्न समितियों द्वारा लिये गए निर्णयों को भी रद्द कर सकता है।
- सदन का अध्यक्ष सदन के कामकाज से संबंधित नियमों का अंतिम व्याख्याकार भी होता है।

fu"d"kZ% आवश्यक है कि इस संदर्भ में वैश्विक स्तर पर प्रयोग होने वाली प्रथाओं का विश्लेषण किया जाए और भारतीय परिस्थितियों के अनुसार उनमें परिवर्तन कर उन्हें लागू करने का प्रयास किया जाए। निष्पक्षता और स्वायत्तता किसी भी मजबूत संस्थान की पहचान होते हैं। अत: आवश्यक है कि सदन के अध्यक्ष पद की निष्पक्षता और स्वायत्तता को बरकरार रखा जाए।

प्र. अल्पमत सरकार और गठबंधन सरकार के समय भारत के राष्ट्रपति की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: भारतीय संसदीय प्रणाली में एक वास्तविक और एक नाम मात्र की कार्यपालिका का रूप अपनाया गया है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति भारत का संवैधानिक अध्यक्ष होता है। संविधान के अनुच्छेद-74 के अनुसार राष्ट्रपति को उनके कार्यों में सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा।

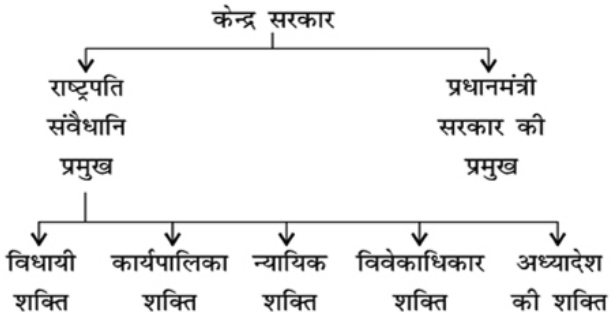

- अनुच्छेद- 78 के अनुसार प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह मंत्रिपरिषद के सभी फैसलों से राष्ट्रपति को अवगत रिाए। संघ के प्रशासन तथा विधान संबंधी प्रस्ताव के संबंध में राष्ट्रपति जो जानकारी मांगे, उसे प्रधानमंत्री दे।

5

आधारिक लोकतंत्र

प्र. क्या आपके विचार में महत्वपूर्ण सीमाओं के पष्ठचात भी पंचायती राज संस्थाओं ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को सुदृढ़ किया है? अपने मत प्रकट कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: पंचायती राज को भारत में 73वें संविधान संशोधन द्वारा संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इसके तहत त्रिस्तरीय शासन प्रणाली को अपनाया गया। पंचायती राज ने पहली बार प्रत्यक्ष लोकतंत्र का प्रयोग किया। पंचायत स्थानीय स्वशासन का हिस्सा है। इसके अंतर्गत स्थानीय समस्याओं का स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों द्वारा समाधान का मॉडल अपनाया गया है। ऐतिहासिक रूप में भारत में चोल काल के स्थानीय स्वशासन का अद्वितीय स्थान है।

वर्तमान पंचायती राज की सीमाएं

- भारत के ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज मंत्रालय द्वारा भारी मात्रा में वित्तीय सहायता के बावजूद अभी पंचायतों के समक्ष वित्तीय समस्या का अभाव है।
- पंचायत के पास अपने पदाधिकारी भी नहीं है। सामान्यत: अखिल भारतीय सेवक या राज्यों के अधिकारी पंचायतों का प्रशासन करते हैं।
- अधिकांश राज्यों ने अभी भी 29 विषय में वर्णित पंचायती राज की शक्तियों को उन्हें नहीं सौंपा है।
- अधिकांश राज्यों में अभी भी जिला नियोजन समिति का गठन नहीं हो सका है और जनपद ग्रामीण विकास एजेंसी से कार्य चल रहा है।
- वर्ष 1995 में सरकार का गठन किया गया, विकास कोष (MPLAD) का गठन किया गया, जिसके अंतर्गत सांसदों को प्राप्त धन सीधे जिलाधिकारी द्वारा खर्च किया जाता है इस पर पंचायतों का कोई नियंत्रण नहीं होता है।

पंचायती राज द्वारा लोकतांत्रिक सुदृढ़ीकरण में भूमिका

पंचायती राज में पहली बार प्रत्यक्ष लोकतंत्र का प्रयोग किया गया। इसमें शासक और जनता दोनों का संवाद सीधे रूप से होता है। इसने प्रत्यक्ष लोकतंत्र का आधार खड़ा किया है। पंचायती राज के माध्यम से सभी वर्गों की भागीदारी से सामाजिक न्याय की स्थापना हुई है। पंचायती राज के माध्यम से लैंगिक न्याय की स्थापना हुई है। इसने महिलाओं को चौखट से चौपाल तक लाने में अहम भूमिका निभाई है। पंचायती राज के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक विकास के साथ राजनीतिक विकेन्द्रकीण का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

प्र. भारतीय संविधान के 73 वें और 74 वें संशोधनों ने किस हद तक महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है?

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: महिला सशक्तिकरण क्या है?
- 73 वां और 74 वां संविधान संशोधन से महिला सशक्तिकरण में योगदान; निष्कर्ष

उत्तर: महिलाओं के अधिकारों और कानूनी हकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए सन् 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गयी। पंचायतों और नगर निगमों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए सन् 1993 में 73 वां और 74 वां संविधान संशोधन किया गया। इस प्रकार स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी सक्रिय भागीदारी की आधारशिला रखी गयी।

महिला सशक्तिकरण

महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, कानूनी और राजनीतिक रूप से मजबूत बनाने के लिए कई कानून बनाए गए हैं। देश के मेरूदंड, ग्रामीण भारत की भूमिका को ध्यान में रखते हुए सरकार ने महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के साथ पंचायती राज प्रणाली को सशक्त बनाने के लिए कई कदम उठाए हैं। इससे कई महिलाओं को लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में निर्वाचित होने का प्रोत्साहन मिला है जो उनके राजनीतिक सशक्तिकरण का संकेत है।

73वें व 74वें संविधान संशोधन

- इन संशोधनों ने संविधान में दो नए भागों को शामिल किया- भाग IX 'पंचायत' (जिसे 73वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया) और भाग IXA 'नगरपालिकाएं' (जिसे 74वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया)।
- लोकतांत्रिक प्रणाली की बुनियादी इकाइयों के रूप में ग्राम सभाओं (ग्राम) और वार्ड समितियों (नगर पालिका) को रखा गया जिनमें मतदाता के रूप में पंजीकृत सभी वयस्क सदस्य शामिल होते हैं।
- उन राज्यों को छोड़कर जिनकी जनसंख्या 20 लाख से कम हो ग्राम, मध्यवर्ती (प्रखंड/तालुक/मंडल) और जिला स्तरों पर पंचायतों की त्रि-स्तरीय प्रणाली लागू की गई है (अनुच्छेद 243B)।
- प्रतिनिधियों के लिये एक समान पाँच वर्षीय कार्यकाल निर्धारित किया गया है और कार्यकाल की समाप्ति से पहले नए निकायों के गठन के लिये निर्वाचन प्रक्रिया पूरी करना आवश्यक है।
- सभी स्तरों पर सीटों को प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरा जाना है [अनुच्छेद 243C(2)]।

6

सांविधिक संस्थाएं/आयोग

प्र. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग कितनी सशक्त संस्था है? प्रभावशाली समुदायों में पिछड़ेपन की बढ़ती मांग सन्दर्भ में इसकी भूमिका का आंकलन कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: 14 अगस्त, 1993 को स्थापित राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (NCBC) सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के तहत एक संवैधानिक निकाय है। इसका गठन राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 के तहत किया गया था। इस आयोग का गठन सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थितियों और कठिनाइयों की जांच करने और इस प्रकार उचित सिफारिशें करने के लिए एक पहल के रूप में किया गया था।

jk"Vªh; fiNM+k oxZ vk;ksx dh Hkwfedk%

NCBC सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को संविधान या किसी अन्य कानून के तहत प्रदत्त संरक्षण उपायों के कार्यान्वयन का मूल्यांकन करने हेतु संबंधित सभी मामलों की जाँच एवं निगरानी करता है।

- सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के सामाजिक-आर्थिक विकास में भाग लेता है तथा सलाह देता है और संघ एवं किसी भी राज्य के अंतर्गत उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करता है।
- यह आयोग सुरक्षापायों के कार्यान्वयन पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है। इसके अलावा आयोग जब भी उचित समझे अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत कर सकता है। राष्ट्रपति द्वारा संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष यह रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है।
- इस तरह की कोई भी रिपोर्ट या उसका कोई हिस्सा, जो किसी भी राज्य सरकार से संबंधित हो, की एक प्रति राज्य सरकार को भेजी जाएगी।
- NCBC सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के संरक्षण, कल्याण एवं विकास तथा उन्नति के संबंध में ऐसे अन्य कार्यों का भी निर्वहन करता है, जिन्हें संसद द्वारा बनाए गए कानून के प्रावधानों के अधीन राष्ट्रपति द्वारा विशेष रूप से उल्लिखित किया गया हो।
- किसी भी मामले पर सुनवाई के दौरान इसे दीवानी न्यायालय के समान शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

fu"d"kZ% विदित हो कि उपरोक्त लाभ के साथ राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के कुछ चुनौतियाँ भी है; जैसे यह महत्वपूर्ण और लाभकारी सामाजिक न्याय अंतर्दृष्टि प्रदान कर पाया है; वहीं एनसीबीसी की सिफारिशें सरकार को बाध्य नहीं करती हैं।

एनसीबीसी विभिन्न जातियों की वर्तमान मांगों का प्रबंधन नहीं करता, जिन्हें बीसी के रूप में वर्गीकृत किया जाना है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि उनके पास पिछड़ेपन का वर्णन करने का कोई दायित्व नहीं हैं।

प्र. अन्तर-राज्य परिषद् के गठन तथा कार्यों का वर्णन कीजिए। यह संस्था कहां तक अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हुई है? (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: अंतर्राज्यीय परिषद की स्थापना संविधान के अनुच्छेद 263 के तहत की गई थी, जिसमें कहा गया है कि जरूरत पड़ने पर राष्ट्रपति ऐसी संस्था का गठन कर सकते हैं। परिषद मूल रूप से विभिन्न सरकारों के बीच चर्चा के लिए एक मंच के रूप में कार्य करने के लिए है। 1988 में सरकारिया आयोग ने सुझाव दिया कि परिषद को एक स्थायी निकाय के रूप में मौजूद होना चाहिए और 1990 में यह एक राष्ट्रपति के आदेश के माध्यम से अस्तित्व में आया।

परिषद की वर्तमान संरचना इस प्रकार है:

- प्रधानमंत्री परिषद का अध्यक्ष होता है।
- सदस्यों में विधानसभाओं वाले सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री शामिल होते हैं।
- अन्य केंद्र शासित प्रदेशों के प्रशासक।
- प्रधानमंत्री द्वारा नामित केंद्र की मंत्रिपरिषद में कैबिनेट रैंक के छ: मंत्री भी इसके सदस्य हैं।

कार्य:

- परिषद के मुख्य कार्य राज्यों के बीच विवादों की जांच करना और उन पर सलाह देना है।
- उन विषयों की जांच और चर्चा करना, जिनमें दो राज्यों या राज्यों और संघ के समान हित हों।
- नीति और कार्रवाई के बेहतर समन्वय के लिए सिफारिशें करना।
- परिषद मूल रूप से विभिन्न सरकारों के बीच चर्चा के लिए एक मंच के रूप में कार्य करने के लिए है।
- केंद्र और राज्यों के बीच अविश्वास पहले से कहीं ज्यादा स्पष्ट नहीं हुआ है, कई राज्य सरकारों का विभिन्न मुद्दों पर केंद्र की वर्तमान सरकार से विवाद हो जाता है, जो आने वाले भविष्य में एक संवैधानिक संकट का कारण बन सकती है। परस्पर सम्मान पर आधारित निरंतर संवाद ही सहकारी संघवाद को बढ़ावा देगा और इस दिशा में पहला कदम बिना किसी देरी के अंतर्राज्यीय परिषद को सक्रिय करना होगा। अत: अपने वर्तमान स्वरूप में यह अभी पूरी तरह सफल नहीं है

7

संघराज्य पद्धति

प्र. संविधान के आधारभूत ढांचे के सिद्धांत ने उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को विस्तारित किया है। परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: संसद और राज्य विधानसभाओं को भारत के संविधान द्वारा प्रदान किए गए अपने अधिकार क्षेत्र में कानून बनाने की शक्ति है। विधेयकों को कानूनों या संविधान में संशोधन के लिए संसद में पेश किया जाता है। लेकिन संसद को दी गई शक्ति पूर्ण नहीं है, क्योंकि इसमें सर्वोच्च न्यायालय का हस्तक्षेप है।

- मूल संविधान के आदर्शों और दर्शन को संरक्षित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने मूल संरचना के सिद्धांत को निर्धारित किया है। इस सिद्धांत के अनुसार, संसद सिद्धांत की मूल संरचना को नष्ट या परिवर्तित नहीं कर सकती है।
- संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संसद के पास संविधान में संशोधन करने की शक्ति है, लेकिन कुछ प्रतिबंध भी हैं। मूल अधिकारों और संविधान के आदर्शों की रक्षा के लिए समय-समय पर हस्तक्षेप से न्यायपालिका द्वारा 'मूल संरचना' की अवधारणा विकसित की गई है।
- एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ में सर्वोच्च न्यायालय ने बुनियादी ढांचे में संघीय ढांचे, भारत की एकता और अखंडता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय और न्यायिक समीक्षा को जोड़ा है।
- न्यायिक समीक्षा एक अदालती कार्यवाही के समान है, जिसमें एक न्यायाधीश किसी निर्णय की वैधता या सार्वजनिक निकाय द्वारा की गई कार्रवाई की समीक्षा करता है। न्यायिक समीक्षा को व्यक्तियों की स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा के लिए एक आवश्यक और बुनियादी आवश्यकता के रूप में मान्यता दी गई है। संविधान में अनुच्छेद 13, 32 व 226 के द्वारा उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति दी गई है।
- संविधान के अनुच्छेद 13 के तहत भाग III में मौलिक अधिकारों में न्यायिक समीक्षा की बाध्यता का वर्णन किया गया था। न्यायिक समीक्षा तब उपलब्ध होती है, जब चुनौती का कोई प्रभावी साधन नहीं होता है। चूंकि न्यायपालिका संविधान की संरक्षक है, इसलिए संविधान के साथ कार्यों की असंगति की जाँच करना, इसके अधिकार क्षेत्र में है।

fu"d"kZ% न्यायिक समीक्षा के पीछे मुख्य उद्देश्य जनता के अधिकारों की रक्षा करना और मौलिक अधिकारों को लागू करना है। जब सरकार के तीन अंग संवैधानिक मूल्यों को नुकसान पहुँचाते हैं और अधिकारों से वंचित करते हैं तो न्यायिक समीक्षा एक रक्षक के रूप में काम करती है। सरकार के लोकतांत्रिक स्वरूप के कारण, लोगों का हर वर्ग निर्णय लेने और नीति निर्माण प्रक्रिया में शामिल होता है।

प्र. क्या आपके विचार में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जिस आधार पर नए राज्यों के निर्माण की मांग उठाई गई है, उसमें अनुक्रमिक परिवर्तन हुआ है? व्याख्या कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: स्वतंत्रता के पश्चात नए राज्यों के निर्माण के लिए किन मानदण्डों को स्वीकारा जाए, यह विवाद का विषय था। जबकि भारत में भाषायी आधार पर राज्यों की मांग हुई।

इसकी जांच के लिए दो आयोगों का निर्माण हुआ-

(i) एक.के. धर आयोग (1948)
(ii) जे.वी.पी. आयोग (1948)

इन दोनों आयोगों ने भाषायी आधार पर राज्यों के निर्माण की मांग को अस्वीकृत कर दिया। भारत में भाषायी आधार पर राज्य की मांग के लिए विशाल आंध्र आंदोलन का आयोजन किया गया। इस आंदोलन द्वारा तेलगू भाषा के आधार पर एक नए राज्य आंध्र प्रदेश की मांग की गई।

पहले चरण में राज्यों का गठन: पहले चरण में राज्यों का गठन भाषायी आधार पर किया गया। गांधीवादी नेता श्री रामालू ने आंध्र प्रदेश राज्य के निर्माण के लिए अनशन किया एवं उनकी मृत्यु हो गई परिणामस्वरूप व्यापक हिंसा हुई और संघ सरकार ने पहली बार भाषायी आधार पर एक नए राज्य का निर्माण कर दिया।

राज्य पुनर्गठन आयोग: आंध्र प्रदेश नामक एक नए राज्य के निर्माण के बाद भारत में राज्यों के पुनर्गठन के लिए फजल अली की अध्यक्षता में एक आयोग (1953) में गठित किया गया। जिसके अन्य दो सदस्य हृदयनाथ कुंजरू और के.एन. पणिवकर थे।

राज्य के पुनर्गठन आयोग ने भारत में राज्यों के पुनर्गठन के लिए निम्नलिखित मानकों का प्रयोग किया-

(i) राष्ट्रीय विकास
(ii) पंचवर्षीय योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन
(iii) प्रशासनिक और वित्तीय क्षमता
(iv) राष्ट्र की एकता और अखण्डता

आयोग की अनुशंसा के अनुसार 1956 में 14 नए राज्यों एवं 6 केंद्र शासित प्रदेशों का निर्माण किया गया। इसके लिए संविधान में 7वां संविधान संशोधन किया गया।

दूसरे चरण में राज्यों का गठन: दूसरे चरण में राज्यों के गठन की विशेषता यह थी कि विकास के आधार पर नए राज्यों का निर्माण किया गया। जिसके तहत छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड एवं झारखण्ड का निर्माण हुआ।

- वर्ष 2014 में भारत में नए राज्य का निर्माण तेलंगाना राज्य के रूप में हुआ। तेलंगाना क्षेत्र आंध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों के मुकाबले पिछड़ा हुआ था तथा वहां लंबे समय से विकास हेतु एक अलग राज्य की मांग की जा रही थी।

8

योजना और आर्थिक विकास

प्र. आर्थिक सुधारों की पहल से विकास दर में गतिवृद्धि होने के पश्चात भी भारत के सामाजिक विकास परिणामों में आया आंशिक सुधार क्या प्रतिपादित करता है।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: वर्ष 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास की नई रणनीति का प्रयोग किया गया और सार्वजनिक उद्यमों को प्राथमिकता के बजाए, उदारीकरण एवं निजीकरण की नीति पर बल दिया गया, इसे ही भारत में आर्थिक सुधार पहल के नाम से जाना जाता है।

- इसके अंतर्गत औद्योगिक नीति में परिवर्तन करते हुए यह प्रावधान किया गया कि अब उद्योगों की स्थापना के लिए लाइसेंस आवश्यक नहीं होगा।
- अब केवल छह महत्वपूर्ण उद्योगें के लिए लाइसेंस की आवश्यकता होगी। आयात का सरलीकरण किया गया एवं आपत पर लागू कठोर प्रतिबंधों को हराया गया।
- उदारीकरण की नीति के अंतर्गत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने की नीति अपनाई गई।
- नई नीति के अंतर्गत निजी उद्यमियों को बाजारवादी नियमों के आधार पर चलने की छूट प्रदान की गई। इस प्रकार भारतीय आर्थिक गतिविधि में विकास को बल मिला।
- उदारीकरण के तहत आर्थिक सुधारों से भारत को लाभ प्राप्त हुआ है।
- इसके अतिरिक्त भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि हुई है। रोजगार के नए अवसर भी प्राप्त हुए हैं।

हलांकि आर्थिक सुधारों के पश्चात भारत के सामाजिक परिणामों में आया आंशिक सुधार क्योंकि भारत के सामने निम्नलिखित चुनौतियां अभी भी विद्यमान है-

(i) अभी भी देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन मापन कर रहा है।

(ii) महिलओं एवं बच्चों में कुपोषण के दर अभी भी ऊंची है।

(iii) गरीबी रेखा के नीचे के लोगों को स्वास्थ्य एवं शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध नहीं है।

इसलिए 12वीं पंचवर्षीय योजना में तीव्र और सतत् समावेशी विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

आर्थिक वृद्धि के लाभों का समतापूर्वक वितरण होने से मानव के जीवन स्तर में एवं जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं पोषण का स्तर बेहतर होता है।

प्र. भारतीय अर्थव्यवस्था का उदारीकरण पर्याप्त आर्थिक सुधारों के साथ नहीं हुआ है। टिप्पणी करें।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: भारत में उदारीकरण
- कमियां
- निष्कर्ष

उत्तर: भारत में उदारीकरण की प्रक्रिया मई 1991 से आरंभ हुई। भारत में, उदारीकरण को औद्योगिक संवृद्धि और सामाजिक विकास की प्रक्रिया को गतिमान करने के उद्देश्य से अपनाया गया था। उदारीकरण के तहत, भारतीय और विदेशी उद्यमी ऊर्जा, परिवहन, संचार, पेट्रोलियम जैसे कई क्षेत्रों में प्रवेश कर सकते हैं और सरकार अधिक शक्ति के साथ सामाजिक और आर्थिक विकास कार्यक्रम को लागू करने के लिए मुक्त होती है।

उदारीकरण के पश्चात कमियां उजागर

उदारीकरण की नीति के परिणामस्वरूप देश में उद्योग एवं अवसंरचना क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में बेहद वृद्धि हुई। इसने औद्योगिक क्षेत्र में मंदी पर लगाम लगाई। सकल घरेलू उत्पाद में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई। विभिन्न प्रोजेक्टों की स्थापना में व्यापक निवेश और आधुनिकीकरण ने विशेष रूप से कपडा, ऑटोमोबाइल, कोयला खदान, रसायन एवं पेट्रो-रसायन, धातु, खाद्य प्रसंस्करण, सॉफ्टवेयर उद्योग इत्यादि को ऊंचा उठाया। अवसंरचना के विकास के साथ, रोजगार अवसरों में वृद्धि हुई। हालांकि, उदारीकरण के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी परिलक्षित हुए। यह तथ्य भी सामने आया कि कुछ चुनिंदा राज्यों में ही निवेश हुआ जिससे प्रादेशिक असमानता की खाई चौड़ी हुई। कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, महाराष्ट्र, राजस्थान और पश्चिम बंगाल में अधिक भारतीय और विदेशी निवेश हुआ।

उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखण्ड, ओडीशा, केरल एवं कुछ उत्तर-पूर्वी राज्यों की उपेक्षा की गई जिसके परिणामस्वरूप यहां असमान औद्योगिक विकास हुआ। इसने बेरोजगारी और गरीबी की समस्या में वृद्धि की, मुद्रास्फीति दर में वृद्धि और अन्य सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को बढ़ाया।

उदारीकरण ने बड़ी कंपनियों और बहुराष्ट्रीय निगमों की संवृद्धि को सुनिश्चित किया लेकिन परम्परागत कुटीर और लघु पैमाने के उद्योगों, विशेष रूप से सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों में, को बुरी तरह प्रभावित किया। लघु उद्योग बड़े उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने में अक्षम हैं और इन्हें सफल होने के लिए तकनीकी पहुंच और नेटवर्क एवं अधिक वित्त और अनुदान की आवश्यकता है।

9 भारतीय राजनीति में जाति, धर्म एवं नृजातीयता

प्र. नृजातीयता एक अंतर्निहित कारण है, जिसने भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र में समस्याओं के समाधान में एक बड़ी चुनौती पेश की है। टिप्पणी कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: पूर्वी भारत का भारतीय राजनीति में एक विशिष्ट स्थान रहा है। इस बहुजातीय समाज में असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और हिमालयी राज्य सिक्किम शामिल हैं। उत्तर-पूर्व भारत, पूरा क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है, जो कई आंतरिक संघर्षों और संघर्षों का घर है। लंबित सीमा विवाद, उग्रवाद और आतंकवादी समस्याएं, संसाधनों के बंटवारे के विवाद कुछ सामान्य समस्याएं हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र को काफी अशांत बना दिया है।

- उत्तर जातीय या जनजातीय पूर्व भारत बड़ी संख्या में जनजातीय समूहों का घर है,जो विभिन्न ऐतिहासिक समय में विभिन्न दिशाओं से आए हैं। ये समूह विभिन्न नस्लीय शेयरों से संबंधित हैं। विभिन्न भाषाएं बोलते हैं और विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराएं हैं। हालाँकि, विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में जनजातीय लोगों के अलगाव के कारण पूर्वोत्तर क्षेत्र में जनजातीय दावा और जनजातीय संघर्ष का उदय हुआ।
- एक जातीय समूह एक ऐसा समूह है, जिसके सदस्य एक सामान्य विरासत के माध्यम से एक-दूसरे के साथ पहचान करते हैं, जिसमें अक्सर आम भाषा, सामान्य संस्कृति, सामान्य धर्म और एक विचारधारा शामिल होती है, जो सामान्य विरासत या सजातीय विवाह पर जोर देती है।
- एक विविध समाज के भीतर जातीय समूह संख्यात्मक ताकत, राजनीतिक झुकाव, सामाजिक आर्थिक संबंध, राष्ट्रीय मामलों के प्रभाव और सांप्रदायिक एकता के मामले में एक-दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। अविश्वास, असहमति, प्रतिस्पर्द्धा और अहिंसा का सार होने पर इस रिश्ते को झटका लगता है।
- जातीय संघर्ष का तनाव संबंधित समुदायों के प्रति वंचन और अप्रतिदेय अपेक्षाओं की भावना के माध्यम से उभरा। यह अंतर्दृष्टि आम तौर पर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असुरक्षा और उदासीनता की भावनाओं से जुड़ी होती है।

प्र. व्याख्या कीजिए कि भारत की लोकतांत्रिक राजनीति में कैसे सामाजिक कोटी के रूप में जाति भी एक राजनीतिक कोटे में परिवर्तित हो रही है।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: जाति भारतीय समाज की परम्परागत एवं मूलभूत संरचना है और परम्परागत रूप में जाति विभाजित समाज में जातियों के आधार पर वैवाहिक संबंध, खान-पान और व्यवसाय निर्धारित किए जाते हैं। इसलिए समाज में जाति स्थिर व गतिहिन मानी जाती है। जहां व्यक्ति का स्थान समाज में जन्म के आधार पर किया गया।

जाति आधारित समाज विषमतामूलक और समुदाय प्रधान है। जबकि भारतीय संविधान में प्रत्येक व्यक्ति की गरीमा को समान महत्व तथा संविधान में समानता एवं बंधुत्व को केन्द्रीय महत्व प्रदान किया गया है, इसलिए सैद्धांतिक रूप से यह प्रतीत होता है कि जाति एवं लोकतंत्र एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। रजनी कोठारी ने उपरोक्त मान्यता का खण्डन कर दिया। उनके अनुसार जाति और लोकतंत्र भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक-दूसरे के पूरक हैं। और यह भी कहा कि जो लोग भारतीय समाज में जातिवाद की शिकायत करते हैं उन्हें न तो भारतीय राजनीति की समझ है न ही भारतीय समाज की। जाति के द्वारा ही भारत में लोकतांत्रिकरण हुआ है क्योंकि भारत की परिस्थितियां पश्चिमी समाजों से अलग है। भारत में जातियों ने दबाव समूह का कार्य किया, जातीय समूह के द्वारा बहुमत के शासन को व्यावहारिक बनाया गया, सत्ता का पिछड़ी जातियों की ओर स्थानांतरण संभव हुआ। इसलिए भारत में आधुनिकता का अभिप्राय परम्पराओं की समाप्ति नहीं बल्कि परम्पराओं का ही आधुनिकीकरण है। इसलिए जातियों का लोकतंत्र के द्वारा आधुनिकीकरण किया गया और जातीय समूहों की स्थापना हुई। इसी मान्यता का समर्थन रूडोल्फ एवं रूडोल्फ ने किया और उन्होंने इसे जातियों का लोकतांत्रिक अवतार कहा।

अत: रजनी कोठारी की मान्यता उन लोगों से भिन्न है जो यह मानते हैं कि लोकतंत्र का आरोहण ऊपर से हुआ। राजनी कोठारी के अनुसार लोकतंत्र भारतीय समाज एवं परम्पराओं के अनुसार स्वीकार किया गया तथा समाज की कोई भी संरचना पूर्णत: विलुप्त नहीं होती, बल्कि उसका रूप परिवर्तित हो जाता है और भारत में लोकतंत्र लागू होने के बाद जातियों का भी रूप परिवर्तित हुआ। अत: स्पष्ट है कि जातियों के सामाजिक कोटे के संवैधानिक अनुप्रयोग राजनीति कोटे के रूप में परिवर्तित हो गयी है और जातियों ने लोकतंत्र में अपना स्थान मजबूती से स्थापित किया है।

प्र. अपर्याप्त अंतर-दलीय लोकतंत्र ने भारतीय लोकतंत्र के कामकाज को किस हद तक प्रभावित किया है?

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: अंतर दलीय लोकतंत्र का आशय स्पष्ट करना है। साथ ही अंतर दलीय लोकतंत्र की कमी से भारतीय लोकतंत्र को होने वाले नुकसान के बारे में चर्चा करनी है।

उत्तर: राजनीतिक दल एक राजनीतिक संस्था के रूप में होते हैं जो शासन में राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने एवं उसे बनाए रखने का

10

दल प्रणाली

प्र. मतदाताओं का मतदान व्यवहार राजनीतिक कारकों की तुलना में सामाजिक एवं आर्थिक कारकों से ज्यादा प्रभावित होता है। स्पष्ट कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: मतदान व्यवहार प्रत्येक देश की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मतदाताओं का मतदान व्यवहार किसी देश की राजनीतिक दशा व दिशा तय करता है। मतदान व्यवहार विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है; जो समय, स्थान व परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। मतदान व्यवहार को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग मत व्यक्त किए हैं।

- उल्लेखनीय है कि भारत में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की अवधारणा को अपनाया गया है। इसका अर्थ है कि भारत के नागरिकों को मतदान करने के लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं होगी, बल्कि एक निश्चित आयु पूर्ण कर लेने के बाद उन्हें मतदान करने के लिए पात्र माना जाएगा।
- पहले भारत में मतदान करने की न्यूनतम आयु 21 वर्ष निर्धारित की गई थी, लेकिन 61वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से मतदान करने की न्यूनतम आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है। यानी अब 18 वर्ष की आयु पूरी कर लेने वाला प्रत्येक भारतीय नागरिक मतदान करने के लिए पात्र होता है।
- मतदान व्यवहार का सामान्य अर्थ मतदाताओं की उस मन:स्थिति से होता है, जिससे प्रभावित होकर कोई मतदाता मतदान करता है। यानी मतदान व्यवहार इस बात को इंगित करता है कि लोगों ने क्या सोचकर मतदान किया है। मतदाताओं का मतदान व्यवहार सार्वजनिक चुनावों के परिणाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मतदान व्यवहार एक राजनीतिक के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक अवधारणा है।
- भारत की सामाजिक संरचना जाति व्यवस्था से अत्यधिक प्रभावित है, इसीलिए भारतीय निर्वाचन प्रणाली में इसका प्रभाव काफी गहनता से होता है। राजनेताओं के राजनीतिक दल जाति के आधार पर वोट हासिल करने का प्रयास करते हैं। इसी संदर्भ में, रजनी कोठारी ने यह कहा भी है कि भारत की राजनीति जातिवादी है और भारत में जातियां राजनीतिकृत हैं।
- विभिन्न राजनीतिक दल और राजनेता चुनावी लाभ अर्जित करने के लिए धार्मिक भावनाओं को भड़काते हैं और इनके वशीभूत होकर लोगों का मतदान व्यवहार प्रभावित हो जाता है। इसके परिणाम स्वरूप चुनावी नतीजे भी प्रभावित होते हैं।
- वहीं ऐसे मतदाता चुनाव में अधिक रुचि लेते हैं, जिनकी आर्थिक स्थिति बेहतर होती है। इसके विपरीत, निर्धन मतदाता, दिहाड़ी मजदूर, रेहड़ी पटरी वाले लोग अपनी दैनिक मजदूरी की कीमत पर मतदान को प्राथमिकता नहीं दे पाते हैं। यदि निर्धन लोग मतदान को प्राथमिकता देंगे, तो इससे उनकी दैनिक मजदूरी पर नकारात्मक असर पड़ सकता है। अत: मतदाता की आर्थिक स्थिति भी मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है।
- यदि मतदाताओं को इस बात का आभास हो जाए कि अमुक राजनीतिक दल देश में राजनीतिक स्थिरता कायम कर सकता है और इसके अलावा अन्य राजनीतिक दल देश में राजनीतिक स्थिरता कायम नहीं कर सकते हैं, तो ऐसी स्थिति में मतदाता सामान्यत: राजनीतिक स्थिरता कायम करने में सक्षम राजनीतिक दल को ही अपना मत देते हैं। यानी यह कारक भी मतदाताओं के मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। हालाँकि यह कारक सामाजिक आर्थिक कारक से कम प्रभावशाली है।

प्र. यह कहना कहां तक सही है कि क्षेत्रीय दलों ने भारतीय लोकतंत्र तथा संघीय व्यवस्था को मजबूत किया है? उपयुक्त उदाहरणों के साथ अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: लोकतांत्रिक व्यवस्था में क्षेत्रीय दलों के अच्छे और बुरे, दोनों ही प्रभाव एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। विस्तृत विविधता वाले देश में, क्षेत्रीय असंतुलन, भाषायी और जातीय समूहों का कुछ क्षेत्रों में केंद्रीयकरण के साथ-साथ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के निर्माण एवं संतुलित विकास के नियोजन की विफलता के कारण क्षेत्रीय पार्टियों का विकास स्वाभाविक है।

- संघीय व्यवस्था वाले कुछ देशों में राष्ट्रीय पार्टियां अपनी प्रादेशिक या क्षेत्रीय शाखाओं को क्षेत्रीय इच्छाओं व अपेक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने की पर्याप्त स्वायत्ता देती हैं। भारत में केंद्र नियंत्रित राष्ट्रीय पार्टियों में ऐसे लचीलेपन की व्यवस्था नहीं है। क्षेत्रीय दलों के फलने-फूलने का यह दूसरा कारण है।
- कुल मिलाकर क्षेत्रीय दल भारत के संसदीय और संघीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण प्रतिभागी है। उनमें से अधिकांश का कोई अलगावादी अथवा पृथकतावादी कार्यक्रम नहीं है। जैसा कि पहले कहा गया है कि सभी क्षेत्रीय दल सांस्कृतिक अथवा क्षेत्र आधारित दल नहीं होते। उनमें से कुछ निश्चित रूप से एवं एक

11

सामाजिक आंदोलन

प्र. उत्तर-उदारीकरण काल में उपभोग पद्धतियों और आर्थिक गतिविधियों के प्रति उच्च समर्पण ने भारत में पर्यावरणीय आन्दोलनों को असफलता की ओर प्रशस्त किया है। व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: भारत में पर्यावरण संसाधनों के संरक्षण के लिए सबसे पुराना प्रसिद्ध जन आंदोलन जोधपुर जिले में खेजड़ी के जंगलों की रक्षा के लिए बिश्नोई आंदोलन है, जो 18वीं शताब्दी का है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का प्रयास करने वाले बेहतर ज्ञात जन आंदोलनों में से हैं- चिपको आंदोलन (1973) टिहरी गढ़वाल में वनों की रक्षा के लिए, साइलेंट वैली बचाओ आंदोलन (1978) नीलगिरि जीवमंडल में एक बांध निर्माण प्रस्ताव को रद्द करने के लिए, जंगल आंदोलन (1982) द्वारा सिंहभूम जिले के आदिवासियों ने सिंहभूम के जंगलों में साल को सागौन से बदलने के सरकारी आदेशों को रद्द करने के लिए, पश्चिमी घाट के जंगलों को बचाने के लिए अप्पिको चालुवली (1983), नर्मदा बचाओ आंदोलन (1985), जो एक उचित पुनर्वास पाने के लिए मानवाधिकार आंदोलन के रूप में शुरू हुआ था।

- सामान्यत: देखा जाता है कि पर्यावरणीय आंदोलन विफल हो जाते हैं, क्योंकि उनके पास पर्यावरणीय तनावों के प्रभावों के बारे में पर्याप्त तकनीकी जानकारी और डेटा की कमी होती है इसलिए यह नहीं पता होता है कि किस तरह की मांग की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए ताप विद्युत संयंत्रों के विरोधियों ने कभी भी ऐसे पौधों के फसल की पैदावार, मवेशियों के स्वास्थ्य, स्मारकों, जल निकायों, जंगलों, राख, तालाब के रिसाव के कारण भूजल प्रदूषण पर प्रभाव के संबंध में मांग नहीं उठाई है।
- इसी तरह, पश्चिमी घाटों की रक्षा करने का प्रयास करने वाले पर्यावरणविदों ने लंबी दूरी तक ले जाने वाली अम्लीय गैसों के बीच संबंध नहीं देखा है, जो पश्चिमी घाटों में वनों के नष्ट होने का कारण बनेंगी और इस तरह कृष्णा, गोदावरी और कावेरी जैसी प्रमुख पूर्व की ओर बहने वाली नदियों में जल प्रवाह को बदल देंगी। तेलंगाना और आंध्र प्रदेश जैसे तटवर्ती राज्यों के बीच संघर्ष को गति देगा।
- विभिन्न प्रकार के पर्यावरण आंदोलनों के बीच आपस में बहुत संवाद और कोई सहयोग नहीं है, पर्यावरण आंदोलनों और अन्य जन-समर्थक आंदोलनों के बीच तो दूर ही है। नतीजतन, पर्यावरणीय लड़ाइयों को आम जनता से बहुत कम समर्थन मिलता है।
- पर्यावरण आंदोलन की सबसे बड़ी कमजोरियों में से एक पर्यावरण कानून की स्वीकृति है, जो पर्यावरण प्रबंधन में कोई सार्वजनिक भागीदारी नहीं प्रदान करता है। कानून उलट गया है और लगभग निष्क्रिय है। पारदर्शिता के लिए नियामक प्राधिकरण और उद्योग से पूछना और उचित परिश्रम करना, जो कि पर्यावरणविदों की सामान्य मांग है, व्यर्थ है।

प्र. चिपको आंदोलन के महत्व पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: 1970 के दशक में प्रसिद्ध पर्यावरणविदों सुन्दरलाल बहुगुणा, चण्डीप्रसाद भट्ट तथा गौरा देवी के नेतृत्व में तत्कालीन उत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तराखंड) के चमोली जिले में जंगल के पेड़ों की कटाई को रोकने के लिए स्थानीय लोगों के द्वारा यह आंदोलन शुरू किया गया था। पर्यावरण की रक्षा पर केंद्रित यह आंदोलन बड़े पैमाने पर हुआ जिसमें स्थानीय किसानों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। किसानों के अतिरिक्त सबसे ज्यादा जिन्होंने बढ़-चढ़ कर जिसने हिस्सा लिया वह थीं महिलाएं। चिपको आंदोलन के नाम से ही स्पष्ट है कि उस समय जब भी कोई पेड़ों को काटने आता था तो आंदोलनकारी पेड़ों से चिपक जाते थे।

चिपको आन्दोलन में तरह-तरह के लोगों ने स्थायी-अस्थायी हिस्सेदारी की थी। महिलाओं ने इस आन्दोलन को ग्रामीण आधार और स्त्री-सुलभ संयम दिया तो छात्र-युवाओं ने इसे आक्रामकता और शहरी-कस्बाती रूप दिया। जिला चमोली में मण्डल, फाटा, गोपेश्वर, रैणी और बाद में डूँगरी-पैन्तोली, भ्यूंढार, बछेर से नन्दीसैण तक; उधर टिहरी की हैंवलघाटी सहित अनेक स्थानों और बडियारगढ़ आदि क्षेत्रों तथा अल्मोड़ा में जनोटी-पालड़ी, ध्याड़ी, चांचरीधार (द्वाराहाट) के प्रत्यक्ष प्रतिरोधों में ही नहीं बल्कि नैनीताल तथा नरेन्द्रनगर में जंगलों की नीलामियों के विरोध में भी महिलाओं और युवाओं की असाधारण हिस्सेदारी रही।

इस आंदोलन का महत्व इस रूप में देखा जा सकता है कि इसने केंद्रीय राजनीति के एजेंडे में पर्यावरण को एक बड़ा मुद्दा बना दिया था। उत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तराखण्ड) में इस आंदोलन ने 1980 में तब एक बड़ी जीत हासिल की, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने केंद्रीय कानून के माध्यम से प्रदेश के हिमालयी वनों में वृक्षों की कटाई पर 15 वर्षों के लिए रोक लगा दी। बाद के वर्षों में यह आंदोलन देश के विभिन्न भागों- पूर्व में बिहार, पश्चिम में राजस्थान, उत्तर में हिमाचल प्रदेश, दक्षिण में कर्नाटक और मध्य भारत में विंध्य तक फैला गया था।

प्र. भारत में हरित क्रांति का राजनीतिक परिणाम क्या हुआ है? स्पष्ट कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: भारत में हरित क्रांति का असली उद्देश्य था, भारत में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना और अगर सटीक रूप में कहा जाए तो इसका मुख्य उद्देश्य भारत को खाद्यान्न के उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाना था। अब हम यह देख सकते हैं कि उस समय अपनाई गई नीतियों में अब तक कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया गया है और भारत की समस्त जनता को भूख की समस्या से छुटकारा दिलाने में और पर्याप्त मात्रा में उपयुक्त पोषण की व्यवस्था की चुनौतियों का सामना करने में यह क्रांति विफल हो गई है।